july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 3

वर्ष 2, अंक 7, जुलाई-2016
आषाढ़, वि. सं. 2072, ₹50

मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

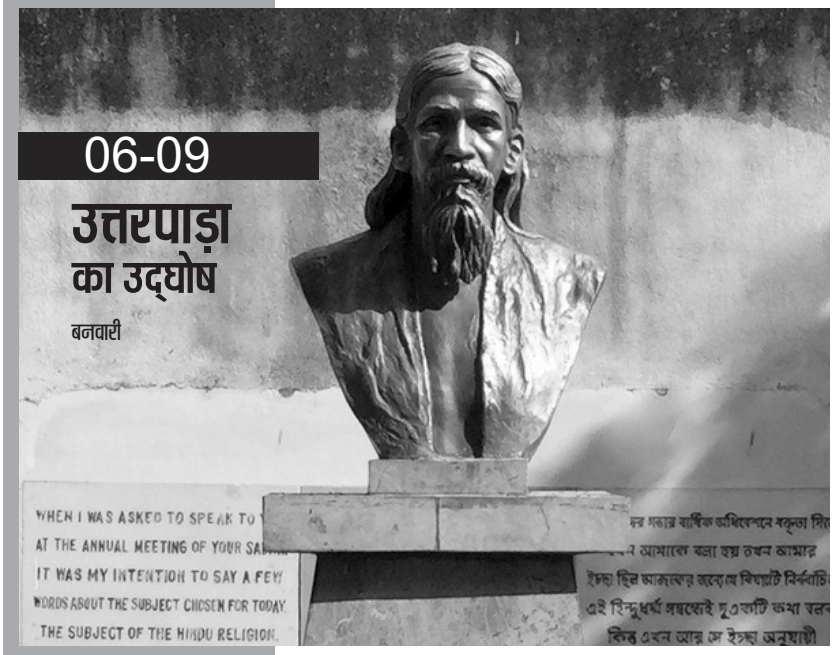

06-09
उत्तरपाड़ा का उद्घोष
बनवारी

10-15
राष्ट्रीय प्रेरणापुंज मधुकर दत्तात्रेय देवरस
हरिकृष्ण निगम

16-29
धारणक्षम विकेंद्रित अर्थव्यवस्था
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

30-37
राष्ट्रीय एकात्मता और संस्कृति की वैचारिक पृष्ठभूमि डॉ. प्रमोद कुमार दुबे

38-45
वैदिक मूल्यों के संवाहक श्रीकृष्ण
डॉ (श्रीमती) जयश्री शुक्ल

46-51
सूखा : संकट पानी का या सोच का
नरेश सिरोही

52-57
कहाँ की जाति... कैसी जाति?
डॉ. सीतेश आलोक

58-61
उलटियाँ होने पर बरतें सावधानी
डॉ. ज्योत्सना

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 के लिए प्रकाशित एवं एक्सेल प्रिंट, सी-36, एफ एफ कॉम्पलेक्स, झंडेवाला, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-930883-5-7

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-27565018
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 4

यत्ते भूमि विखनामी क्षिप्रं तदापि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयर्पिपम।।

अथर्ववेद 12/1/35

जल इस धरा पर प्रकृति की देन है,
जो हमें स्वत: ही प्राप्त होता है तथा सुख प्रदान करता है। अत: परमात्मा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए ऐसे जलों की रक्षा करनी चाहिए।

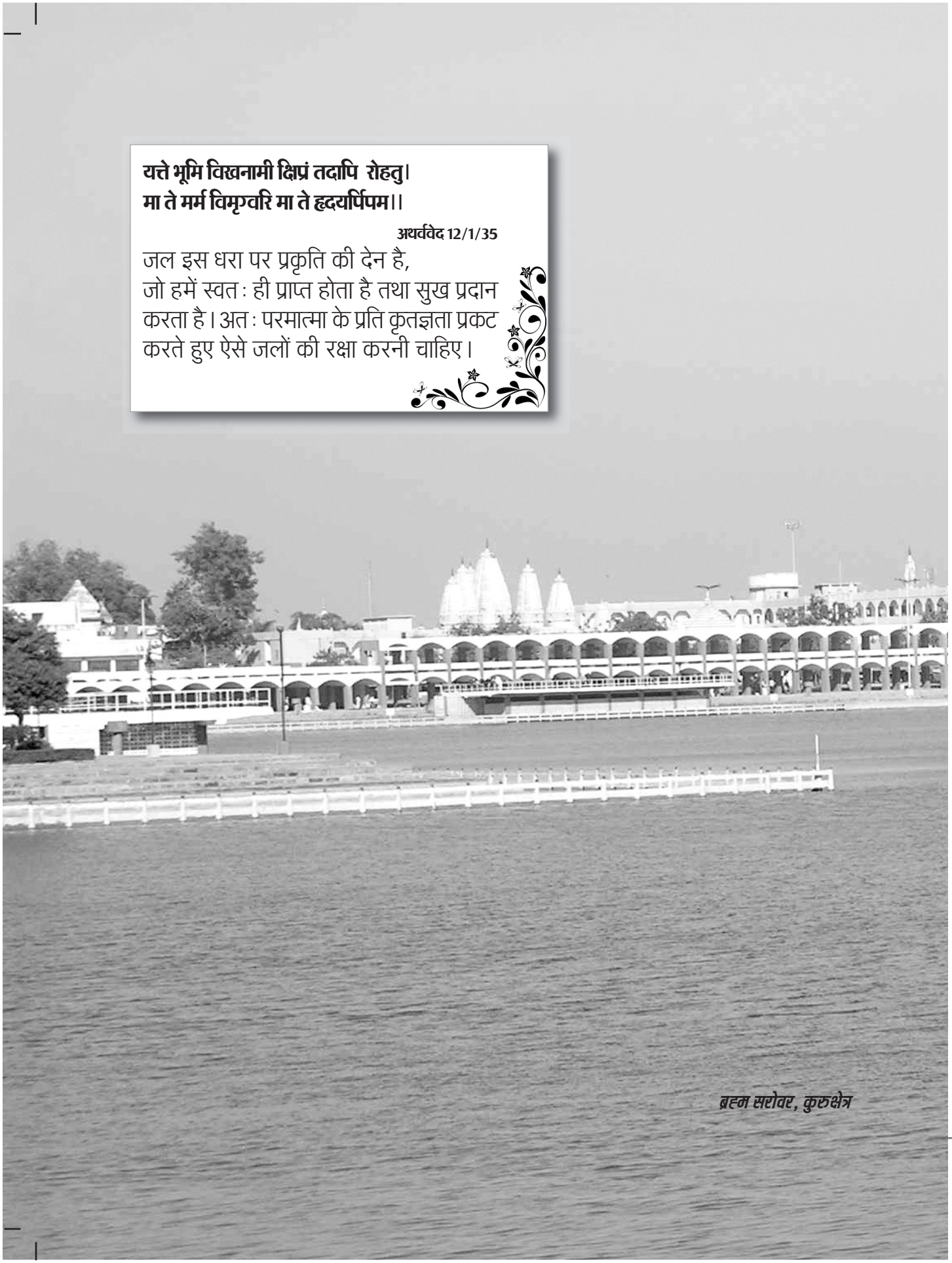

ब्रह्म सरोवर, कुरुक्षेत्र

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 5

अथ

भयंकर सूखे के संकट से जूझ रहे महाराष्ट्र में करवाए जा रहे आई पी एल मैचों के आयोजन पर उच्च न्यायालय ने जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए वहाँ की सरकार को फटकार लगाते हुए पूछा कि आपके लिए आई पी एल ज्यादा महत्त्वपूर्ण है या जनता को जल संकट से राहत दिलाना। इस याचिका में कहा गया था कि आई पी एल के दौरान महाराष्ट्र के तीन स्टेडियम में साठ लाख लीटर पानी व्यर्थ जाएगा, जबकि राज्य में अधिकांश स्थानों पर लोग पानी के लिए तरस रहे हैं। ऐसे में सूखाग्रस्त क्षेत्र में मैचों का आयोजन करवाना कितना मानवीय है। कई बार देखा गया है कि सारी परिस्थितियों से अवगत होते हुए भी हमारी सरकारें सोई रहती हैं। अंततः न्यायालयों को उन्हें सचेत करना पड़ता है।

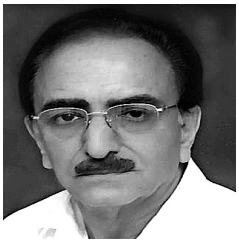

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

पिछले दो सालों से लगातार मानसून के अभाव से इस बार हमारा देश भयावह सूखे को झेल रहा है। देश के लगभग दस राज्यों के 35 करोड़ लोग, यानी कि पूरी आबादी का प्रायः एक चौथाई हिस्सा सूखे की मार से त्रस्त है। देश के 256 जिले सूखाग्रस्त घोषित किए गए हैं। मराठवाड़ा, बुंदेलखंड आदि की स्थिति तो बहुत विकराल है। अधिकांश राज्यों के जल संसाधन या तो सूख चुके हैं या सूखने की कगार पर हैं। ताल-तलैया, जोहड़, कुएँ, नहर-नाले सूखे पड़े हैं। गृहणियों को मीलों चल कर पानी के लिए भटकना पड़ रहा है। नदियों के आसपास की बालू से खोद-खोद कर पानी तलाशा जा रहा है। अभूतपूर्व दृश्य सामने आ रहे हैं। धारा 144 लगा कर बंदूकों के साये में टैंकरों से पानी का वितरण हो रहा है। अस्थिविसर्जन तक के लिए पानी नहीं है। पानी के अभाव में आप्रेशन रोके जा रहे हैं। पानी के अभाव में लाखों की संख्या में लोग अपने गाँवों को छोड़कर जा रहे हैं। बड़ी दुखद, दयनीय व अमानवीय स्थिति है। शब्दों में जिसका वर्णन करना कठिन है।

सूखे का संकट प्राकृतिक आपदा है लेकिन इसका भयावह प्रसार हमारी सरकारों की कोताही, इच्छा शक्ति के अभाव व भ्रष्टाचार के कारण है। ऐसा नहीं कि सिंचाई के साधनों के संवर्धन के लिए, भूजल स्तर उठाने के लिए जल संरक्षण के लिए योजनाएँ न बनती हों। बनती हैं, पैसा भी पानी की तरह बहाया जाता है, लेकिन फिर भी उसका लाभ किसानों तक पहुँचता नहीं। महाराष्ट्र का ही उदाहरण लें वहाँ सिंचाई के लिए नहरों की महती योजनाएँ बनाई गईं, लेकिन सब फाइलों में घटता रहा वास्तविकता में कुछ हो नहीं पाया। प्रलम्बित योजनाओं के लिए बार-बार फंड बढ़ाए गए लेकिन वे गंतव्य तक न पहुँच कर भ्रष्ट अफसरों व नेताओं के खजाने बढ़ाते गए। संसद में सूखे पर बहस में बोलते हुए कृषिमंत्री राधामोहन सिंह ने बताया कि देश में 91 बड़ी, छोटी सिंचाई परियोजनाएँ पिछले दो दशक से लम्बित हैं। 11 अप्रेल, 2016 को 'राष्ट्रीय खरीफ कॉन्फ्रेंस में बोलते हुए एस. के. पटनायक सचिव, कृषि मंत्रालय ने इस कटु सत्य को स्वीकारा कि लघु व सीमांत कृषकों के लिए काफी सहायता भेजते हुए भी यह उन तक पहुँच नहीं पाती, जिससे समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती है।

सूखे से निबटने के लिए देश की विभिन्न नदियों को जोड़ने की बात वाजपेयी जी के समय से की जा रही है, लेकिन इस दिशा में कुछ विशेष नहीं हो पाया। कहने को अब भी सरकार की ओर से संसद में बताया गया कि सरकार इस दिशा में काम कर रही है। केन और बेतवा नदियों का संपर्क इस वर्ष के अंत तक हो जाएगा। इससे बुंदेलखंड में पानी की समस्या का समाधान होगा। लेकिन यह कब वास्तविकता बन पाएगी, मालूम नहीं।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 6

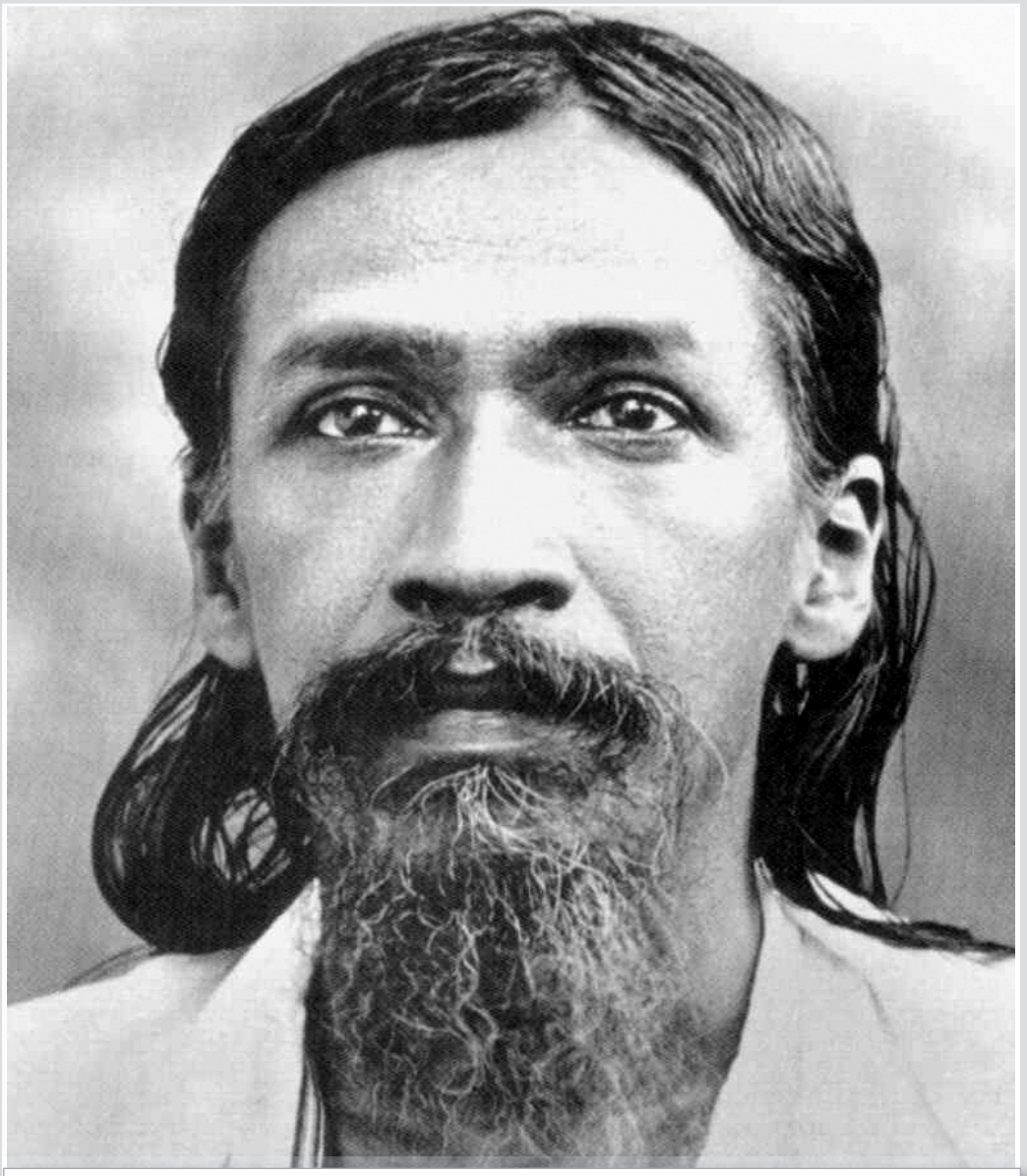

श्री अरविंद ने 30 मई, 1909 को बंगाल के उत्तरपाड़ा की एक राजनीतिक सभा में जो भाषण दिया था वह उत्तरपाड़ा-भाषण के नाम से विख्यात हुआ। यह भाषण एक साथ ही उनके रूपांतरण का, भारत माता की मुक्ति का, पश्चिमी सभ्यता पर भारतीय सभ्यता की विजय का और सनातन धर्म की विश्वजनीनता का उद्घोष है।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 7

उत्तरपाड़ा का उद्घोष

बनवारी

जब यूरोपीय बुद्धि मनुष्य की जिज्ञासा को अनात्म पदार्थ की क्रियाओं को समझने की दिशा में सीमित कर रही थी, भारत में श्री अरविंद का जन्म हुआ। श्री अरविंद का जन्म भारत के एक ऐसे बंगाली परिवार में हुआ था, जिसका मुखिया यूरोपीय जाति और उसके ज्ञान-विज्ञान की श्रेष्ठता को स्वयं सिद्ध मानता था। श्री अरविंद के पिता अपने तीनों पुत्रों को उसी यूरोपीय सभ्यता का अनुसरण करते देखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने आरंभिक शिक्षा के लिए उन्हें दार्जिलिंग के अंग्रेजी भाषी लोरेटो आवासीय स्कूल में पढ़ने को भेजा। उसके बाद अपने तीनों बच्चों को उन्होंने इंग्लैंड भेज दिया। श्री अरविंद उस समय केवल सात वर्ष के थे। उनके पिता ब्रह्मसमाजी थे। वे अपने बच्चों को ईसाई नहीं बनाना चाहते थे, लेकिन वे उन्हें यूरोपीय सभ्यता में निष्णात देखना चाहते थे। श्री अरविंद से उनकी अपेक्षा यह थी कि वे पढ़-लिखकर भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षा में उत्तीर्ण हों और ब्रिटिश सरकार की प्रशासकीय सेवा का अंग होकर भारत लौटें और कुल का गौरव बढ़ाएँ। श्री अरविंद ईश्वर की कुछ और इच्छा सिद्ध करने के लिए जन्में थे। इसलिए उन्होंने यूरोप में रहते हुए, उसकी सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान की मूल प्रकृति को समझा, पिता की आज्ञा मानते हुए प्रशासकीय परीक्षा में भी बैठे, उत्तीर्ण भी हुए, लेकिन उस प्रक्रिया को अधूरा छोड़कर भारत लौट आए और भारत की अस्मिता को पहचानने में लग गए।

श्री अरविंद 1879 से 1893 तक 14 वर्ष इंग्लैंड में रहे थे। यह वही समय था जब यूरोप और अमेरिका में ज्ञान की एक नई दिशा के रूप में साइंस की प्रतिष्ठा हो रही थी। 1880 के आसपास पहली बार यूरोपीय जाति ने साइंस का उपयोग अपने भौतिक जीवन को बदलने में करना आरंभ किया था। उससे पहले औद्योगिक क्रांति में साइंस की कोई भूमिका नहीं थी। वह कुछ यांत्रिक प्रक्रियाओं को सिद्ध करके ही फलीभूत हुई थी, लेकिन थॉमस एडिसन के विद्युत के उपभोग का रास्ता दिखाने के बाद साइंस को सर्वस्वीकृति मिलने लगी। बीसवीं शताब्दी यूरोपीय साइंस के वर्चस्व की शताब्दी सिद्ध होने वाली थी। साइंस केवल अनात्म पदार्थ की प्रक्रियाओं को

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 8

समझने तक सीमित रहती तो वह मानव जाति के लिए अधिक उपयोगी होती, लेकिन उसने दावा किया कि सृष्टि में पदार्थ के अतिरिक्त जानने के लिए और कुछ नहीं है, इसलिए पदार्थ ही हमारे ज्ञान की सीमा है, उससे भिन्न ज्ञान अज्ञान है।

साइंस से पहले ऐसी ही प्रतिबंधक भूमिका ईसाई चर्च की थी। ईसाई मत के अनुसार मनुष्य ईश्वर को जानने में समर्थ नहीं है, क्योंकि हमारी ज्ञानेद्रियाँ इस सृष्टि से उद्भूत हैं और ईश्वर सृष्टि से परे है। इसलिए ईश्वर स्वयं एक देवदूत को यह संदेश देकर भेजता है कि वह एक सर्वव्यापक और सर्वसमर्थ शक्ति है। देवदूत यह संदेश किसी चुने हुए मसीहा को देता है। उस मसीहा के माध्यम से ही ईश्वर के बारे में शेष सब लोगों को पता लगता है। अर्थात् ईश्वर के बारे में हमारी जानकारी ईसा मसीह के वचन में सीमित है। इस धारणा को चर्च के द्वारा यह प्रतिबंधक स्वरूप मिला कि जो ईसा मसीह के वचन में निष्ठा नहीं रखता, वह ईश्वर को नहीं जानता, वह अंधेरे में पड़ा है, वह अज्ञानी है। अपनी इसी धारणा के कारण अब तक वे गैर ईसाइयों को धर्मांतरित करने में जुटे रहे हैं। ईश्वर को सृष्टि से बाहर देखने के कारण वे भी इस सृष्टि को अनात्म ही मानते हैं। इस अर्थ में ईसाई मत और यूरोपीय साइंस की विश्व दृष्टि एक ही है। यही कारण है कि अधिकांश यूरोपीय वैज्ञानिक निष्ठावान् ईसाई रहे हैं।

इन दोनों के बीच पुल का काम करने वाली एक तीसरी धारा के प्रतिनिधि के रूप में 1872 में जब भारत में श्री अरविंद का जन्म हुआ था, ब्रिटेन में बर्टेंड रसेल का जन्म हुआ था। वे यूरोपीय विद्वानों के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो ईसाई धर्म को मानने वाली यूरोपीय जाति के बीच साइंस के लिए दार्शनिक आधार तैयार कर रही थी। बर्टेंड रसेल अपने को अज्ञेयवादी कहते थे। उनका कहना था कि वे यह सिद्ध नहीं कर सकते कि ईश्वर नहीं है, इसलिए अपने को अज्ञेयवादी

उत्तरपाड़ा स्थित पब्लिक लाइब्रेरी जहां श्री अरविंद का भाषण हुआ था।

कहते हैं। बर्टेंड रसेल जैसे लोगों के द्वारा जो तर्कवाद प्रचलित हो रहा था, वह हर धारणा को केवल तर्क की कसौटी पर कसने का आग्रही था। उनके लिए तर्क एक उपयोगी कसौटी भर नहीं था, बल्कि तर्क ही एकमात्र और अंतिम प्रमाण था। इस तार्किक दृष्टि ने विवेक की परंपरा को काफी क्षति पहुंचाई और जीवन को स्वेच्छाचार की ओर धकेलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

श्री अरविंद ने अपने यूरोपीय प्रवास के दौरान इन सभी धाराओं को देखा। 1893 में वे भारत लौट आए। भारत उस समय ब्रिटिश शासन से मुक्त होने की व्याकुलता से भरा था। श्री अरविंद भारत आकर भारत माता को ब्रिटिश शासन से मुक्त करने के संघर्ष में निमग्न हो गए। जब बंगभंग विरोधी आंदोलन शिखर पर था, श्री अरविंद उसके मुख्य सूत्रधारों में थे। उनका मुख्य काम उस संघर्ष को वैचारिक आधार प्रदान करना था। ब्रिटिश सरकार की उत्पीड़क नीतियों के कारण उन्हें भारतवासियों के संघर्ष को संगठित करने का काम गुप्त रूप से भी करना पड़ा। इसी सबके बीच उन्हें जेल हुई और वे 1908 में लगभग एक वर्ष के लिए अलीपुर जेल में रहे। उन पर राजद्रोह के आरोप सिद्ध न कर पाने के कारण ब्रिटिश शासन को उन्हें छोड़ देना पड़ा, लेकिन कारागार में तो ईश्वर ने उन्हें अपनी अंतःश्चेतना की ओर उन्मुख करने के लिए भेजा

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 9

था। कारागार में रहते हुए उन्हें अंतरानुभूति हुई। उन्होंने साक्षात् वासुदेव के दर्शन किए। कारावास में ही उनका रूपांतरण हुआ। उत्तरपाड़ा का भाषण उनके इसी रूपांतरण का उद्घोष है।

उनका यह भाषण 30 मई, 1909 को बंगाल के उत्तरपाड़ा की एक राजनीतिक सभा में दिया गया था। यह भाषण एक साथ ही उनके रूपांतरण का, भारत माता की मुक्ति का, पश्चिमी सभ्यता पर भारतीय सभ्यता की विजय का और सनातन धर्म की विश्वजनीनता का उद्घोष है। अपने भाषण के आरंभ में उन्होंने बताया कि किस तरह वासुदेव कृष्ण के रूप में उन्हें परमात्मा का साक्षात्कार हुआ। भगवान ने उनके रूपांतरण के उद्देश्य से उन्हें भगवद्गीता की ओर उन्मुख किया था। यह स्मरण रखना चाहिए कि भगवद्गीता भगवान का विश्व-रूप दर्शन करवाने के कारण सनातन धर्म के मूल ग्रंथों में गणनीय है। श्री अरविंद ने बताया कि उन्हें अपने चारों तरफ हर वस्तु में और हर घटना में भगवान वासुदेव ही दिखाई दिए। वासुदेव ने उन्हें कहा कि वही जगत् हैं, वह सब प्राणियों में व्याप्त हैं। उन्हें सभी अपनी अंतःचेतना के विकास के द्वारा पा सकते हैं। यह दिव्यप्रकाश फैलाने के लिए ही भारत उठ रहा है। यही सनातन धर्म है। यह सब धर्मों का मूल है। इसी धर्म को वासुदेव ऋषियों, संतों और अवतारों के द्वारा उद्घाटित करते रहे हैं। इस ज्ञान का योगपूर्वक साक्षात्कार करते हुए उसे संसार को फिर से बताने के लिए ही श्री अरविंद का जन्म हुआ है।

यूरोप ने अपनी विश्व-विजय की आकांक्षा से संसार के लिए ज्ञान के जो द्वार बंद कर रखे थे, श्री अरविंद ने अपने उत्तरपाड़ा भाषण से उन्हें खोल दिया। उन्होंने कहा कि उन्होंने ईश्वर का साक्षात्कार किया है, अपनी अतःचेतना का विकास करके सभी ईश्वर का साक्षात्कार कर सकते हैं, यह ईसाई मत का निराकरण

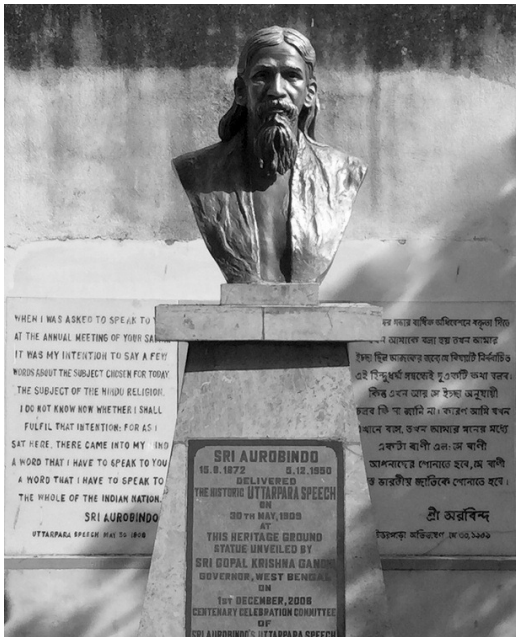

उत्तरपाड़ा पब्लिक लाइब्रेरी में श्री अरविंद के भाषण की स्मृति में स्थापित स्मारक।

था। उन्होंने कहा कि यह सृष्टि ईश्वर से ही उद्भूत है, जीव मात्र में ईश्वर का अवतरण है, इसलिए सृष्टि अनात्म नहीं है। ज्ञान को पदार्थ में सीमित नहीं किया जा सकता। पदार्थ ज्ञान की बाधा है, चैतन्य पर पड़े उसके आवरण को हटा कर ही आप वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यह साइंस की विश्व दृष्टि का निराकरण था। बुद्धि की बाह्य वृत्ति ही तर्कधर्मा है। ज्ञान का मूलस्वरूप तो अंतर्वृत्ति से प्राप्त बोध है। यह तर्कवादियों का निराकरण था। श्री अरविंद ने जो कहा वह यूरोपीय सभ्यता के प्रभाव से, उसके बौद्धिक नियंत्रण से मुक्ति का उद्घोष था। उसके बाद उन्हें राजनीतिक सक्रियता की आवश्यकता नहीं रही। 1910 में वे पुदुच्चेरी आए और फिर जीवन पर्यंत यहीं रहे। पुदुच्चेरी उनकी योग साधना का क्षेत्र बना।

लेखक चिंतक व वरिष्ठ पत्रकार हैं।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 10

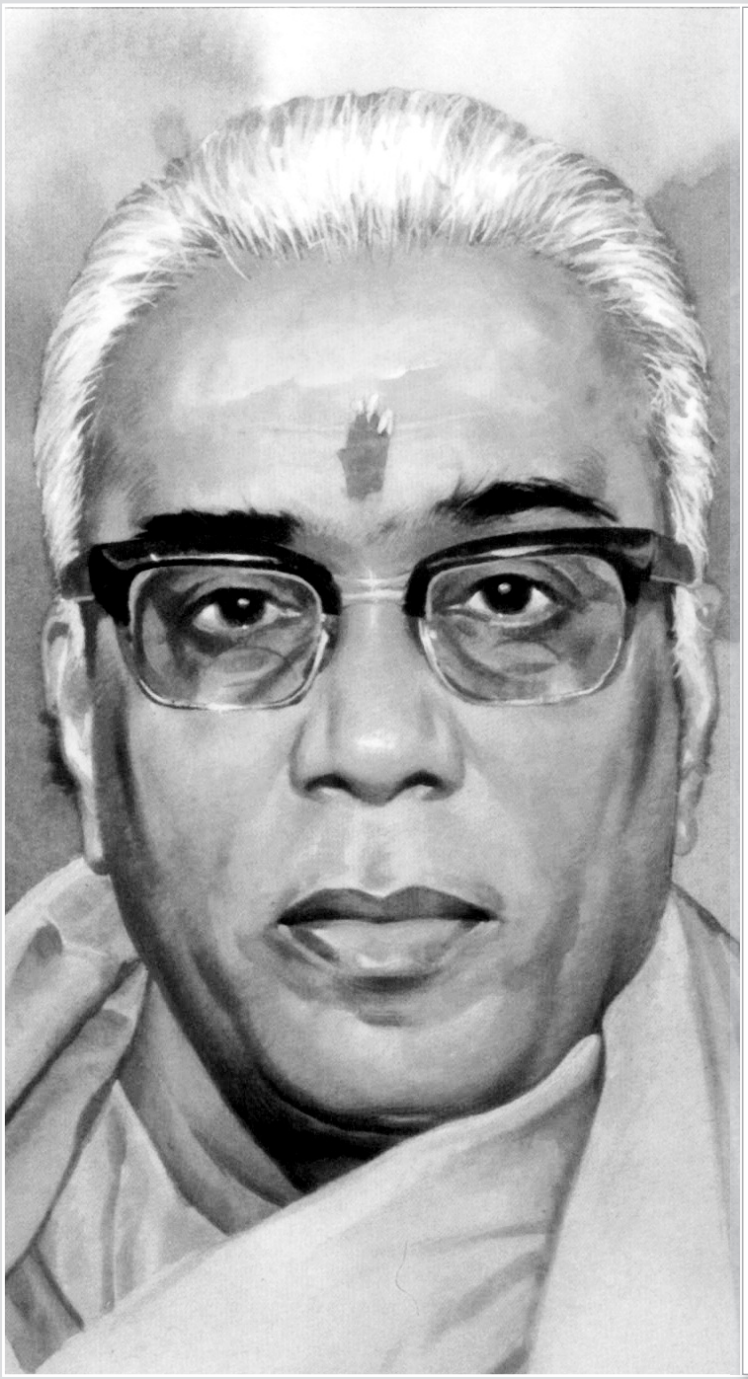

1948 के दौरान गांधी जी की हत्या के बाद संघ के सरसंघचालक श्री गुरु जी को अधिकांश समय जेल में रहना पड़ा था और कुछ युवा स्वयंसेवकों को संघर्ष का भार स्वयमेव उठाना पड़ा था। उस समय गुरु जी की दृष्टि बालासाहब देवरस जी पर केंद्रित हुई जो उनके अनुसार हर स्तर पर उस समय भी मौन के आवरण के साथ-साथ हर स्तर के स्वयंसेवक से तादात्म्य बनाए रखने में सक्षम थे। छोटे से छोटे मुद्दे पर भी बालासाहेब देवरस जी की दृष्टि स्पष्ट एवं तर्क पूर्ण थी।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 11

राष्ट्रीय प्रेरणापुंज
मधुकर दत्तात्रेय देवरस

हरिकृष्ण निगम

मधुकर दत्तात्रेय देवरस उपाख्य बाला साहेब देवरस राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अस्तित्व के संक्रमण काल में एक ऐसे कर्णधार थे, जिन्हें डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार जी द्वारा स्थापित पहली शाखा में प्रवेश का सौभाग्य मिला था। वे उनकी सांगठनिक प्रक्रिया के माध्यम से आगे बढ़ने व उत्कृष्ट नेतृत्त्व देने वाले प्रचारक के रूप में उभरे तथा यावज्जीवन अपने समर्पण भाव के कारण धरातल-स्तर पर संगठन के लिए वरदान सिद्ध हुए।

एक न्यायविद् की पृष्ठभूमि में प्रशिक्षित होने के कारण संगठन के कानूनी पक्ष में चलाए संघर्ष में बाला साहेब देवरस ने एक अमिट छाप छोड़ी। वे संघ के उन चार सर्वोत्कृष्ट प्रभावी प्रवक्ताओं में थे, जिन्होंने 1948 में उस पर केंद्रीय सरकार के लगाए राजनीतिक प्रतिबंध से टक्कर लेकर उसे तर्क के आधार पर सहमति से हटाने का संघर्ष किया था, जिससे भारतीय समाज के संबंध में उनका अपना दृष्टिकोण भी सदैव सदाशयी, स्पष्ट और वैज्ञानिक था। वैसे तो देवरस बंधु-द्वय, जिनमें भाऊराव जी देवरस सम्मिलित किए जाते हैं और राष्ट्रीय-प्रेरणा के दीप-स्तंभ कहे जाते हैं, पर बाला साहब देवरस जी संघ के अक्षयवट के बीज स्वरूप व संघ जैसे विशाल हिंदू संगठन में सामाजिक समता के लिए सदैव सर्वस्व समर्पण करने वाली तेजस्वी व अप्रतिम प्रेरणा थे।

यह सर्वविदित है कि 1948 के दौरान गांधी जी की हत्या के बाद संघ के सरसंघचालक श्री गुरु जी को अधिकांश समय जेल में रहना पड़ा था और कुछ युवा स्वयंसेवकों को संघर्ष का भार स्वयमेव उठाना पड़ा था। उस समय गुरु जी की दृष्टि बालासाहब देवरस जी पर केंद्रित हुई जो उनके अनुसार हर स्तर पर उस समय भी मौन के आवरण के साथ-साथ हर स्तर के स्वयंसेवक से तादात्म्य बनाए रखने में सक्षम थे। छोटे से छोटे मुद्दे पर भी बालासाहेब देवरस जी की दृष्टि स्पष्ट एवं तर्क पूर्ण थी।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 12

यद्यपि अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष और सुधारों के प्रति सजगता हिंदू समाज में अरसे से जन्म ले चुकी थी और संघ के प्रकल्पों की कार्यविधि में भी परिलक्षित थी पर वैचारिक स्तर पर उनका उद्घोष सारे देश की आँखें खोलने वाला था- 'यदि छुआछूत कोई पाप नहीं है तो इस विश्व में कोई अन्य पाप है ही नहीं।' उन्होंने हिंदू समाज का आह्वान करते हुए कहा था कि इसे समूल नष्ट कर दें- 'थ्रो इट लॉक स्टाक एंड बैरल।' उस समय अनेक अंग्रेजी समाचार पत्र संघ के भविष्य के बारे में शंका प्रकट करते हुए 'आफ्टर गुरु जी, हू?' कहकर जैसे संघ के लिए शोक-संवाद गढ़ने में भी जुटे थे। पर क्योंकि संघ में मौन सेवा के साथ एक व्यक्ति के वर्चस्व, वंशवाद या क्षेत्रवाद का कभी नामो-निशान नहीं था, बालासाहब देवरस जी मिडिया के प्रचार-दुष्प्रचार से बचकर उस समय भी

समाज सेवा के क्षेत्र में पहली बार उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में 1000 समाज सेवा प्रकल्प प्रारंभ किये थे, जब 1989 में डॉ. हेडगेवार जन्म शताब्दी मनाई गई थी। आज इन सेवा प्रकल्पों की संख्या डेढ़ लाख से अधिक पहुँच चुकी है।

समाचार/माध्यमों के महत्त्वपूर्ण पत्रकारों से अच्छे संबंध बनाए रख सके। दिन-प्रतिदिन की स्थानीय राजनीति की उठापठक से बचकर भी वे भ्रष्टाचार विरोधी एवं लोकतांत्रिक परंपराओं की रक्षा करने वाले आंदोलनों की अपनी तरह से अगुआई करते रहे। एक तरफ जयप्रकाश नारायण के प्रजातांत्रिक मूल्यों का समर्थन, दूसरी और नानाजी देशमुख के विकास कार्यों में स्वयंसेवकों के जुड़ने का समर्थन; उनके हृदय की विशालता का द्योतक था। भारतीय जनसंघ के जनता पार्टी में विलयन का कष्टकर निर्णय बालासाहब देवरस जैसे अनूठे व्यक्तित्व के धनी ले सकते थे। पर उनकी इस राजनीति की भौगोलिक दृष्टि ने ही आगे आने वाले वर्षों में सदैव-सदैव के लिए भारत की हिंदू-व्यवस्था-पालिटी में बदलाव संभव बना दिया था।

समाज सेवा के क्षेत्र में पहली बार उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में 1000 समाज सेवा प्रकल्प प्रारंभ किये थे, जब 1989 में डॉ. हेडगेवार जन्म शताब्दी मनाई गई थी। आज इन सेवा प्रकल्पों की संख्या डेढ़ लाख से अधिक पहुँच चुकी है। ऐतिहासिक 'एकात्मता यात्रा' एवं 'रामजन्मभूमि आंदोलन' के दौरान जिस प्रकार हिंदुओं के देशव्यापी दृष्टिकोण में उन्होंने जादुई परिवर्तन लाया था वह इतिहास-मनीषियों व समाजशास्त्रियों के अध्ययन का आज तक विषय बना रहा है। हिंदुओं की राष्ट्रीय पहचान, एक हजार वर्षों की दासता का प्रतिकार;

> विश्व इतिहास में नया मोड़ लाने वाला घटनाक्रम, हिंदुओं का केंद्रीभूत राजनीतिक प्लेटफार्म-यह सारी अभिव्यक्तियाँ तभी से मानसपटल पर विमर्श का सार्वजनिक विषय बनी थीं। देश में नेहरूवाद और सभी रंगों के मार्क्सवादी विचारों के अनुशीलन पर उसी दिन से प्रश्न लगना प्रारंभ हो गया था।

बालासाहब देवरस जी के जीवन के अनेक प्रसंग आज भी याद किए जाते हैं, जिनके भावपूर्ण विवरण यदा-कदा हिंदी व मराठी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। श्री राम शेवालकर, श्री कु.सी. सुदर्शन जी, श्री भा. वर्णेकर, श्री बलवंतराव किन्हेकर आदि ने उनसे संबंधित अनेक मार्मिक प्रसंगों को चित्रांकित किया है। प्रसिद्ध पत्रकार बनवारीलाल पुरोहित ने अपने निजी अनुभव के आधार पर बालासाहब एवं भाऊराव देवरस सेवान्यास करंजी, तहसील लांजी, बालाघाट, मध्यप्रदेश के कुछ वर्षों पहले

एक प्रकाशन में लिखा था कि नब्बे के दशक के प्रारंभ में यदि राजीव गांधी आश्वासन देकर राममंदिर से मुकर

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 13

ऐतिहासिक 'एकात्मता यात्रा' एवं 'रामजन्मभूमि आंदोलन' के दौरान जिस प्रकार हिंदुओं के देशव्यापी दृष्टिकोण में बालासाहेब ने जादुई परिवर्तन लाया था वह इतिहास-मनीषियों व समाजशास्त्रियों के अध्ययन का आज तक विषय बना रहा है। हिंदुओं की राष्ट्रीय पहचान, एक हजार वर्षों की दासता का प्रतिकार; विश्व इतिहास में नया मोड़ लाने वाला घटनाक्रम, हिंदुओं का केंद्रीभूत राजनीतिक प्लेटफार्म-यह सारी अभिव्यक्तियाँ तभी से मानसपटल पर विमर्श का सार्वजनिक विषय बनी थीं।

नहीं जाते तो देवरस बंधुद्वय का मंदिर निर्माण का सपना साकार हो चुका होता और इस राष्ट्र के नए इतिहास ने एक नई करवट ले ली होती। इतिहास अतीत से प्रेरणा लेता है, वर्तमान में जाग्रत रहते हुए ही भविष्य के स्वर्णिम सपनों को साकार किया जा सकता है, यह बालासाहब देवरस व भाऊराव देवरस जी का मानना था। क्योंकि उन दिनों संसद में भाजपा के केवल दो ही सदस्य थे, इसलिए बनवारी लाल पुरोहित जैसे कांग्रेसी सांसद की रामभक्ति व राममंदिर के लिए हिंदू मन की व्यथा को सुनकर देवरस बंधु गद्‌गद् हो गए थे। उस समय का ज्वलनशील राजकीय माहौल 'बनातवाला बनाम बनवारीलाल' के वादविवाद के रूप में समाचारपत्रों की सुर्खियों में था। बाद में कहा जाता है कि संसद में इस बहस के परिणाम से तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी 'अस्वस्थ' हो गए और उन्होंने कांग्रेसी संसद सदस्य के विरुद्ध गृहमंत्री बूटा सिंह से भी निष्कासन की कार्रवाई की अनुशंसा की थी। पुरोहित जी जो नागपुर से कांग्रेसी संसद सदस्य थे उनसे भी गुप्त रूप से देवरस बंधुओं के प्रभाव के विषय में एक गोपनीय चर्चा की गई थी।

बलवंतराव किन्हेकर जी ने लिखा है कि बालासाहब देवरस जी का यदि किसी व्यक्ति से एक बार भी परिचय हो जाए तो वह व्यक्ति कितना भी साधारण क्यों न हो, वे उस व्यक्ति को भूलते नहीं थे। किन्हेकर जी ने डोंगरगढ़ रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म की वर्षों

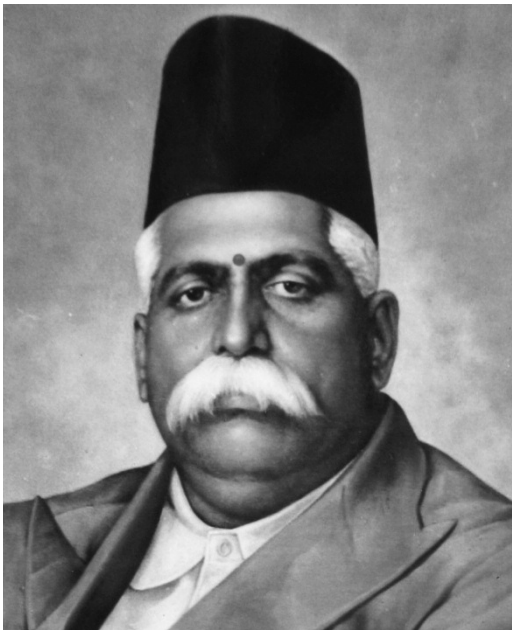

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्थापक डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार।

पुरानी एक घटना का उल्लेख किया है - 'स्टेशन पर स्वयंसेवकों की गणवेश में भीड़ थी। एक एक्सप्रेस गाड़ी जो कोलकाता से नागपुर की ओर जा रही थी वहाँ रुकती है। 'भारत माता की जय', बालासाहब का अभिवादन आदि का जयघोष हो रहा था। उनकी दृष्टि कहीं दूर स्वयंसेवकों के पीछे खड़े एक व्यक्ति को निहारने लगी। उन्होंने आवाज दी- 'अरे डाक्टर!' और हाथ फैला दिए। वह व्यक्ति जो डाक्टर थे एवं सहज ही जिज्ञासावश प्लेटफार्म पर केवल देखने के इरादे से

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 14

वहाँ खड़ा था, आश्चर्य से भर गया। वह समीप पहुँचा एवं उन्हें प्रणाम किया। उससे कुशलक्षेम पूछा कहा कि तुम यहाँ कैसे? डाक्टर ने उत्तर दिया 'आजकल मैं यहीं पर गवर्नमेंट अस्पताल में स्थानांतरित होकर आया हूँ।' कुछ देर पश्चात ही ट्रेन रवाना हुई। डॉक्टर अपने ही मन में विचार करने लगे। क्या गजब का व्यक्तित्व हैं। आज मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति को देखते ही स्मरण किया जबकि मेरी भेंट अपने जीवन में उनसे केवल पाँच मिनट की थी। 'आपातकाल के पश्चात् उनका जगह-जगह स्वागत सत्कार हुआ था। उसी क्रम में ये लांजी ग्राम की पंचायत के भवन में रुके हुए थे जहाँ ग्राम के सरपंच एवं प्रायः सभी गणमान्य एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति उनके स्वागत-सत्कार के लिए एकत्रित हुए थे- उनमे से मैं भी एक था। मेरा भी उनसे परिचय कराया गया था। यह घटना दशकों पुरानी है, पर एक महापुरुष का मुझे पहचान लेना उनके प्रति मेरे आदर को बहुत बढ़ा देता है।'

हिंदू राष्ट्र की अवधारणा, सामाजिक समस्याएँ, संघ की नीतियाँ, सांप्रदायिकता आदि पर लगाए आक्षेप पर समय-समय पर पूछे गए प्रश्नों के बालासाहब देवरस जी द्वारा दिए गए कुछ उत्तर आज भी प्रासंगिक लगते हैं और राष्ट्र विरोधियों की कलई खोलते हैं।

अपने समय में भी तत्कालीन कथित राष्ट्रीय अंग्रेजी दैनिकों में संघ के विरुद्ध जिस स्तर का दुष्प्रचार चलता रहता था वह भी आज की तरह घृणास्पद कहा जा सकता है। केवल एक अंतर है कि संपादक, मीडियाकर्मी या कांग्रेसी अथवा मार्क्सवादी नेता कितना ही ख्याति प्राप्त हो, बालासाहब देवरस जी उसका दो-टूक उत्तर देने में एक क्षण की देरी नहीं करते थे। हिंदू राष्ट्र की अवधारणा, सामाजिक समस्याएँ, संघ की नीतियाँ, सांप्रदायिकता आदि पर लगाए आक्षेप और विभिन्न विषयों पर समय-समय पूछे गए प्रश्नों के बालासाहब देवरस जी द्वारा दिए गए कुछ उत्तर आज भी प्रासंगिक लगते हैं और राष्ट्र विरोधियों की कलई खोलते हैं।

एक बार एक पत्रकार सम्मलेन में प्रतिबंध उचित ठहराते हुए एक संपादक महोदय ने संघ पर सांप्रदायिक, प्रतिक्रियावादी, पुनुरुत्थानवादी, पाषाणयुगीन जैसे रटे-रटाये आरोपों की झड़ी लगा दी। बालासाहब देवरस ने कड़े शब्दों में टोकते हुए कहा कि सबसे पहले आप अपनी गालियों के एजेंट के रूप में काम करना बंद करें तो हमारे समझ में आए। मिथ्या आरोपों द्वारा संघ को बदनाम करने का ही यदि आपका उद्देश्य है तो आप समय-समय पर कम्युनिस्टों व अपने सहयात्रियों के तमाशे को स्वयं परखें-'उनमें से एक जो संसद सदस्य भी हैं, एक पुस्तक लिखी है- 'आर.एस.एस. आफ्टर गोवलकर' (गोवलकर के बाद संघ) जिसमें लिखा है, 'गुरु जी का हिंदू महासभा से झगड़ा हो गया, क्योंकि वे उनके महामंत्री बनना चाहते थे। वे उस पद के चुनाव के लिए खड़े हुए और हार गए और तबसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में आए।' 'हम सब के लिए आश्चर्यचकित करने वाली यह सूचना थी कि जैसे हम सबसे अधिक वे सज्जन ही गुरुजी के बारे में जानते थे। इस तरह की धोखाधड़ी और धृष्टता कांग्रेसी व साम्यवादियों का 'ब्रैंड' बन गया था। श्री गोविंदसहाय ने एक ग्रंथ लिखा था जिसमें उन्होंने कहा कि संघ आरंभ करने से पहले डॉ. हेडगेवार हिटलर से मिलने के लिए जर्मनी गए थे। हर कोई जानता है कि डॉ. हेडगेवार ने एक बार भी देश के बाहर पैर नहीं रखा। ऐसे ही झूठ को स्वयं कांग्रेस के शीर्षस्थ नेता व पूर्व प्रधानमंत्री बढ़ावा देते रहे और राष्ट्र की बुनियाद को खोदने में लगे रहे थे। बालासाहब देवरस के अनुसार संघ पर प्रतिबंध की मांग करने वालों के मुंह पर तमाचे पड़ते

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 15

रहने पर भी, वे इसको बढ़ने से नहीं रोक सके थे। एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में बालासाहब देवरस जी ने संघ विरोधी अभियान की जड़ मुस्लिम वोट पर रखी दृष्टि को बताया था और सहधर्मियों की वोट डालने के प्रति उपेक्षा की प्रवृत्ति कहा था। कदाचित् हिंदुओं के अधिकाधिक संख्या में मतदान करने की नई आदत ने ही अनायास आज का राजनीतिक चित्र बदला है।

स्वयं बालासाहब ने लिखा है कि 1962 के चीन के आक्रमण के समय नेहरू जी ने संघ के लोगों को देशभक्त कह कर 1963 में 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस की परेड में निमंत्रित किया था। तब इस कदम पर समाचारपत्रों व कुछ कांग्रेसियों ने विवाद उठाया तब पंडित नेहरू ने उत्तर दिया था कि संघ के लोग भी देशभक्त हैं और हर आपदा में आगे रहते हैं। इसी कारण संघ के स्वयंसेवकों ने पूर्ण गणवेश में 1963 के गणतंत्र दिवस की परेड में भाग लिया था। साम्यवादी, जो भारत के ऊपर आक्रमण में चीनियों को दोषी न मानने का राष्ट्रद्रोही कृत्य कर सकते थे आज भी अपने को हर घटना में नायक की भाँति प्रस्तुत करते हैं, बालासाहब देवरस के अनुसार समस्त भारतीय प्रायद्वीप के शत्रु रहे हैं।

1962 के चीन के आक्रमण के समय जब नेहरू जी ने संघ के लोगों को 1963 में गणतंत्र दिवस परेड में निमंत्रित किया तब समाचारपत्रों ने विवाद उठाया तब पंडित नेहरू जी ने उत्तर दिया था कि संघ के लोग भी देशभक्त हैं और हर आपदा में आगे रहते हैं।

1984 के सिक्ख विरोधी दंगे हिंदू समाज के लिए अस्तित्व की सबसे बड़ी कसौटी थी। कांग्रेस का बड़ा वर्ग उनके विरुद्ध घृणा फैलाने के लिए दोषी था। उस समय संघ प्रमुख के रूप में बालासाहब देवरस उस नरसंहार के विरोध में खुलकर सामने आए थे। उन्होंने हिंदुओं को कांग्रेसी उन्माद का मोहरा न बनने की अपील की थी। पटना, भरतपुर, रांची, कानपुर एवं जमशेदपुर के स्वयंसेवकों ने अपने क्षेत्रीय प्रभारियों के साथ उनके बचाव में आकर तनाव कम करने की कोशिश की थी। कांग्रेस समर्थित अराजक तत्त्वों ने अपना आक्रोश संघ के गढ़ महाराष्ट्र में सर्वाधिक प्रदर्शित किया था। प्रसिद्ध मराठी फिल्म निर्माता भालाजी पेंढारकर का कोल्हापुर का स्टूडियो जलाकर राख कर दिया गया था। बालासाहब की अपील पर संघ कार्यकर्ताओं से पूरी तरह शांतिपूर्ण प्रतिक्रिया दिखाने की अपील की गई थी। श्री एच.वी.शेषाद्रि के ग्रंथ 'आर.एस.एस. विजन इन ऐक्शन' में उन सभी घटनाक्रमों की पृष्ठभूमि है जिनमें देश में दुष्प्रचार के कारण अनेक बार संघ के विरुद्ध की गई मांग उठते ही, विशेषकर बालासाहब देवरस ने अनेक स्तरों पर अपनी लड़ाई जारी रखी। प्रशासन के सर्वोच्च स्तरों, मंत्रियों. प्रेस कौंसिल, नियामक प्राधिकरणों, राज्य व केंद्रीय सूचना व संचार विभागों से बेझिझक पत्राचार, उनके प्रत्युत्तर व छोटे-छोटे मुद्दों पर उनके तर्कों को काटना-आज ऐतिहासिक महत्त्व के लगते हैं। हिंदू विश्वासों व आस्था के विरोधियों को 'ईशनिंदा' के परिणामों में जो इतरधर्मों के रुझान हैं उससे हर हिंदू को शिक्षा लेने की बात बालासाहब देवरस कह सकते थे। स्पष्टवादिता व सदाशयता के साथ वे अपने भविष्यदर्शी विचार सर्वत्र, निःशंक होकर सभी के सम्मुख रखते थे। वह स्वदेशप्रेम का अप्रतिम रूप थे। उन्हें वस्तुतः आज भी 'राष्ट्रीय प्रेरणा पुंज एवं हिंदू मन को पुनः जाग्रत करने वाले स्वाभिमानी नेता के रूप में याद करना समीचीन होगा।

लेखक चिंतक व प्रसिद्ध स्तंभकार हैं।

वर्तमान अर्थतंत्र केंद्रीकरण का अर्थतंत्र है। वर्तमान अर्थव्यवस्था, विकास का वर्तमान 'मॉडल' गलत दृष्टिकोण पर आधारित है, उपभोक्तावाद पर आधारित है; इसलिए यह 'सस्टेन' कर ही नहीं सकता, यह धारणक्षम हो ही नहीं सकता। यह धारणाक्षम है ही नहीं, शाश्वत नहीं है, टिकाऊ नहीं है। सारी दुनिया में चिंता हो रही है कि क्या करें, फिक्र हो गई है, सभी परेशान हैं। समूची दुनिया के विचारक, समाजवेत्ता आज इस बात से परेशान हैं कि जिस रास्ते पर हम चल रहे हैं, उससे देश का और दुनिया का कल्याण होने वाला नहीं है, भला होने वाला नहीं है। क्या कोई दूसरा रास्ता हो सकता है? रास्ता है। भारत के पास रास्ता है। भारत के पास आना पड़ेगा और भारत के पास आओगे तो पं. दीनदयालजी के चिंतन की ओर स्वाभाविक ही दृष्टि जाएगी। पं दीनदयाल उपाध्याय जी के इसी आर्थिक चिंतन पर विचार करने के लिए आयोजित सेमिनार में विख्यात अर्थशास्त्री डॉ. बजरंगलाल गुप्ता का संबोधन यहाँ प्रस्तुत हैं।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 17

डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

धारणक्षम विकेंद्रित अर्थव्यवस्था

पहले सत्र में डॉ. महेशचंद्र शर्मा ने 'सुख और समृद्धि का मार्ग' यह विषय प्रस्तुत किया जबकि मा. कश्मीरी लाल जी ने दूसरे सत्र में 'वैश्विक परिदृश्य और स्वदेशी' पर अपने विचार रखे। तीसरे समापन सत्र का विषय है 'धारणक्षम विकेंद्रित अर्थव्यवस्था' और वह भी पं. दीनदयाल जी के विचारों के प्रकाश में, यह प्रश्न क्यों उपस्थित हुआ 'धारणक्षम और विकेंद्रित अर्थव्यवस्था का? इसका अर्थ यह है कि अभी अपने देश में और कुछ अन्य देशों में जो अर्थतंत्र और विकास का 'मॉडल' चल रहा है, वह धारणक्षम नहीं है। इसका दूसरा अर्थ यह भी निकलता है कि अगर हम विकेंद्रित अर्थतंत्र के बारे में चर्चा कर रहे हैं तो वर्तमान अर्थतंत्र मूलतः, मुख्यतः केंद्रित अर्थतंत्र है।

पहले हम वर्तमान अर्थतंत्र और विकास मॉडल के संबंध में थोड़ी चर्चा करने का प्रयत्न करेंगे।

हैरॉड-डोमर मॉडल से लेकर नेहरू-महालनोबिस मॉडल तक जितने भी मॉडल हैं, वे सब एक समान हैं। अपने देश में भी आर्थिक विकास के जितने मॉडल हैं वे सब लगभग एक समान हैं, एक जैसे हैं और उसी की नकल आजकल मनमोहन मॉडल चल रहा है। कुल मिलाकर अपने देश में और दुनिया में विकास का जो मॉडल है और जिसके आधार पर बना हुआ अर्थतंत्र चल रहा है, वह क्या है और क्यों हम विकल्प पर विचार कर रहे हैं, क्यों हम पं. दीनदयाल जी के एकात्म मानव के संदर्भ में, नई अर्थव्यवस्था के संदर्भ में विचार कर रहे हैं, इसे समझने का प्रयत्न करेंगे।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 18

जब भी कोई विकास मॉडल देता है तो विकास को परिभाषित करना पड़ता है। विकास याने क्या? किसे कहेंगे विकास? दुनिया के कुछ देशों ने कह दिया कि वे विकसित हैं उन्हींने कुछ देशों को अविकसित कह दिया। हमारे देश में भी होड़ लगी है कि विकास करना है। यह विकास करना याने क्या करना? वर्तमान विकास मॉडल के अनुसार विकास का अर्थ है- प्रति व्यक्ति वास्तविक जी.डी.पी. में वृद्धि (Increase in real per Capita GDP)। एक बार मैं विद्यार्थियों के बीच गया था। मैंने पूछा, समझते हो 'जीडीपी' क्या है? एक विद्यार्थी खड़ा हो गया। उसने कहा सरल है। हिंदुस्तान का आदमी अगर 'जीडीपी' नहीं समझेगा तो क्या समझेगा? 'जीडीपी' का अर्थ है -गैस, डीजल और पेट्रोल! इसी की तो पीड़ा है।

किसी देश में वस्तुओं का और सेवाओं का सालभर में जितना उत्पादन होता है, उनकी 'बाजार मूल्य जोड़ दी जाती है और उसे जनसंख्या में भाग दिया जाता है तो 'पर कैपिटा जीडीपी' (प्रति व्यक्ति जी.डी.पी) निकल आता है। यह गणना गलत है। 'जीडीपी' का यह मापदंड हमको भरमाने वाला है। यह धोखेबाजी वाला है।

पर वास्तव में, जीडीपी का अर्थ है Gross Domestic Product (सकल घरेलू उत्पाद) इसके आधार पर दुनिया के देशों का विकास हो रहा है या नहीं, इसे जाना जाता है, मापा जाता है और इसके आधार पर कोई देश विकसित है या नहीं इसकी घोषणा की जाती है। इस 'जीडीपी' की गणना' कैसे होती है? किसी देश में वस्तुओं का और सेवाओं का सालभर में जितना उत्पादन होता है, उनकी 'बाजार मूल्य जोड़ दी जाती है और उसे जनसंख्या में भाग दिया जाता है तो 'पर कैपिटा जीडीपी' (प्रति व्यक्ति जी.डी.पी) निकल आता है। यह गणना गलत है। 'जीडीपी' का यह मापदंड हमको भरमाने वाला है। आजकल सब जगह घूमकर मैं 'जीडीपी' के इस विचार को ही 'चैलेंज' कर रहा हूँ। यह धोखेबाजी वाला है। दो-तीन उदाहरण से मैं अपनी बात को समझाने का प्रयत्न करता हूँ :-

मान लीजिए कोई महिला किसी घर में नौकरानी का काम रही है। वह झाडू-पोंछा करती है, बर्तन साफ करती है, खाना बनाकर खिलाती है। वर्तमान परिभाषा में वह महिला 'सर्विस' का उत्पादन कर रही है। घर का मालिक उसकी इस 'सर्विस' के बदले में उसे दस हजार रुपये महीना दे रहा है। ये दस हजार 'जीडीपी' में जुड़ जाएंगे। मान लीजिए कि यह नौकरानी नौजवान है और जिस घर में वह काम कर रही है, उस घर के किसी नौजवान से उसे प्यार हो जाए, दोनों में विवाह हो जाए तो अभी तक जो नौकरानी थी वह गृहस्वामिनी बन गई। गृहस्वामिनी हो जाने पर भी वह काम तो सब वही करती है जो वह नौकरानी के रूप में किया करती थी, अंतर केवल यह आया है कि घरवाला अपनी घरवाली को तनख्वाह नहीं देता। वर्तमान परिभाषा के अनुसार, नवगृहस्वामिनी जो 'सर्विस' का उत्पादन कर रही है, वह 'जीडीपी' में नहीं जुड़ेगा।

भारत जैसे देश में अधिकांश काम घरों में परिवारों में ही हुआ करते हैं जबकि यूरोपीय, अमरीकी देशों में ये सब काम बाजार में हुआ करते हैं इसलिए उनका 'जीडीपी' ज्यादा है। भारत के लोगों को कह दिया कि तुम्हारा जीडीपी कम है इसलिए तुम पीछे हो। क्या हम स्वीकार करेंगे इस परिभाषा को?

मैं पहले अध्यापक रहा। मान लीजिए मैं अपने बच्चे को 'इकोनॉमिक्स' पढ़ाता हूँ तो मेरा बच्चा मुझे कोई 'ट्यूशन फीस' तो देगा नहीं। इसलिए देश की 'जीडीपी' बढ़ेगी नहीं। इसकी बजाय हम दो प्राध्यापक आपस में 'कॉन्ट्रॅक्ट' कर लें कि हम एक-दूसरे के बच्चे को

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 19

'इकॉनॉमिक्स' पढ़ाएंगे और उसकी फीस लेंगे तो देश की 'जीडीपी' बढ़ जाएगी! क्या आप इसे स्वीकार करेंगे?

अपने इस देश में संत हैं, महात्मा हैं, सामाजिक कार्यकर्ता हैं, वे बहुत बड़ी मात्रा में देश के लिए बहुमूल्य 'सर्विसेज' दे रहे हैं पर बदले में पैसा नहीं लेते। इसे क्या कहेंगे? देश की 'जीडीपी' कम हो गई? मैं यहाँ व्याख्यान देने आया हूँ। मैंने यह व्याख्यान ऐसी किसी जगह दिया होते जहाँ 'पेमेंट' होता हो तो हमें कम से कम दस हजार रुपये मिलते। इससे देश की 'जीडीपी' बढ़ जाती। यहाँ भाकरेजी तो कुछ देने वाले हैं नहीं। देश की 'जीडीपी' कम हो गई न!

क्या है 'जीडीपी' का 'केल्क्युलेशन'? आप अपने 'किचन गार्डन' में कुछ सब्जियाँ टमाटर, हरा धनिया, मिर्च उगाते हैं। किचन गार्डन से ये सब्जियाँ तोड़ीं और सीधे रसोई में पका ली। बाजार में बेचने नहीं गए। वर्तमान परिभाषा के अनुसार देश की 'जीडीपी' में यह शामिल नहीं होगी।

यहाँ बैठे हुए श्रोताओं में से बहुतों की खेती होगी, किसानी जानते होंगे। किसान फसल पैदा करता है तो पहले वह अपने घर के उपयोग के लिए रख लेता है, शेष को बाजार में बेचने के लिए ले जाता है। इसे बोलते हैं 'मार्केटेबल सरप्लस' 'मार्केट' में जिसकी 'वैल्यू' 'काऊंट' होती है। 'सेल्फ कंसॅम्शन' के लिए जो 'प्रोड्यूस' रख लिया गया है, वह 'काऊंट' नहीं होती इसलिए उतने पैमाने पर 'जीडीपी' कम हो गई या नहीं? उसने जितनी फसल उगाई है, वह पूरी की पूरी फसल बेचने के लिए बाजार ले जाता और फिर अपनी जरूरत का 'प्रोड्यूस' खरीद कर ले आता तो 'जीडीपी' बढ़ जाती।

'जी.डी.पी गणना' के वर्तमान संदर्भ में विस्तृत उदाहरण दिए जा सकते हैं किंतु विषय को मैं लम्बा

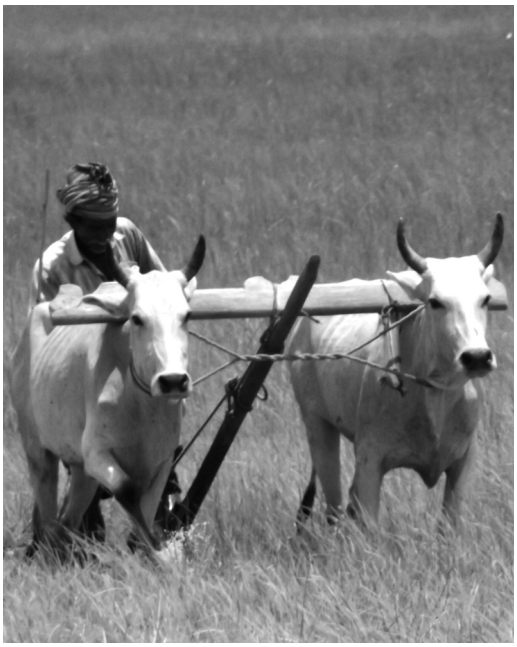

नहीं खींचूगा। कहने का मतलब यही है कि 'जीडीपी' आधारित विकास का 'मॉडल' दोषपूर्ण है और इस संदर्भ में पहला काम है इसे चुनौती देना कि इसे बदला जाना चाहिए।

हमारे देश में जितनी भी आर्थिक नीतियाँ बन रही हैं, विकास के 'मॉडल' बन रहे हैं, उनका उद्देश्य क्या है? हमारी पंचवर्षीय योजनाओं का उद्देश्य क्या है? एक लाईन में उद्देश्य बताते हैं- आम व्यक्ति के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाना। सवाल यह है कि किसी के रहन-सहन का स्तर कब ऊँचा हो जाता है और कब नीचा रह जाता है? 'रहन-सहन स्तर' का मतलब क्या है? इसे 'परिभाषित' किया गया है कि व्यक्ति को उसके उपभोग के लिए जितनी 'वस्तुएं' और 'सेवाएं' उपलब्ध होती हैं उसके आधार पर उसका रहन-सहन का स्तर मापा जाता है- (बास्केट ऑफ गुड्स और सर्विसेज अव्लेबल फॉर कंसॅम्शन)। इस परिभाषा को स्वीकार कर कोई व्यक्ति सुबह से

शाम तक खाता ही रहता है। उससे पूछा जाए कि क्यों भाई! इतना क्यों खा रहे हो? तो उसका जवाब यही होगा कि वह अपना 'रहन-सहन स्तर' बढ़ा रहा है।

अमरीका में जो संकट आया, जिसका उल्लेख यहाँ किया गया वह इस 'ओवर कंसॅम्शन' (अति उपभोग) के कारण ही आया। सन् 2008 के इस वैश्विक संकट में 'उपभोक्तावाद' पर आधारित 'मॉडल विफल होने वाला ही था, अमरीका में वह हुआ भी केवल एक उदाहरण देकर मैं बात को समझाता हूँ :-

अमरीकी बैंकों और वित्तीय संस्थानों ने अमरीकियों से क्या कहा ? जिसके पास मकान नहीं था, उससे पूछा,

अमरीका में जो संकट आया, वह 'ओवर कन्सॅम्शन' के कारण ही आया। सन् 2008 के इस वैश्विक संकट में 'उपभोक्तावाद' पर आधारित 'मॉडल विफल होने वाला ही था, अमरीका में वह हुआ भी।

तुम्हारे पास मकान क्यों नहीं है ? उत्तर मिलता, पैसा नहीं है। बैंकों ने कहा, हम उधार देंगे। उसे उधार दे दिया। जिसके पास एक मकान था, उससे कहा, तुम अमरीका मे रहते हो और तुम्हारे पास एक ही मकान है। मकान तो अदल-बदल कर रहने के लिए होते हैं। हम 'हस्बेंड-वाइफ' बदल देते हैं, तुम मकान नहीं बदल सकते क्या? दूसरा मकान खरीदो। उत्तर आया पैसा नहीं है तो बैंक कहते, हम उधार देंगे। जिनके पास दो मकान थे, उनको बैंको ने कहा, अरे! तुम अमरीका में रहते हो और मकान तुम्हारे पास दो ही हैं। अमरीका में 'हॉलीडे-होम्स' का एक कंसेप्ट है, छुट्टी के दिन घरवालों से छुपकर मटरगश्ती करने का स्थान-उसे बोलते हैं- 'हॉलीडे होम'। बैंकों ने पूछा, तुम्हारे पास क्यों नहीं है, वही उत्तर कि पैसा नहीं है तो बैंकों ने कहा, हम देंगे उधार।

अगर हम अमरीका के बैंकों और वित्तीय संस्थानों के पिछले 20 सालों के 'बिहेवियर' की 'स्टडी' करें तो ध्यान में आएगा कि उन्होंने बेतहाशा लोन दिए। आप कहेंगे कि लोन देने में बुरा क्या है? नहीं, है बुरा। पर हम सामान्य लोग 'लोन' देते समय देख लेते हैं कि उसकी 'पेइंग कपेसिटी या चुकाने की क्षमता नहीं हैं। अमरीका के लोगों ने कहा कि यह तो पिछड़े देशों का 'कन्सेप्ट' है- भारत जैसे देशों का। हम क्यों देखे 'पेइंग कपेसिटी? चुका देगा, नहीं चुकाएगा तो न सही। इसलिए जिनकी 'पेइंग कपेसिटी नहीं थी, उनको 'लोन' दे दिए। उन्हें कहा गया- 'नो इनकम, नो जॉब, नो असेट्स (NINJAS)।' जिनकी न कोई आय है न कोई काम-धंधा और न बापदादा की कोई संपत्ति। ऐसे लोग क्या देंगे? कुछ नहीं। 'निनजास' याने निखट्टू। बैंकों का वसूली का समय आया तो इन निखट्टूओं ने हाथ खड़े कर दिए, कहा, कुछ दिखाई देता हो तो ले जाओ। तमाम बैंक और वित्तीय संस्थान धराशाई हो गए। अमरीकी धरती पर 40 बैंक एक साथ 'कोलॅप्स' हो गए 'बिकॉज ऑफ दिस राँग पर्सेप्शन' - 'ओवर कंसॅम्शन'। जबरदस्त लोन दिए जा रहे हो। कुल मिला कर यह उपभोग पर आधारित विकास का 'मॉडल' है। ज्यादा उपभोग की इच्छाओं को बढ़ाएंगे तो उत्पादन करना पड़ेगा। उत्पादन का आज का तरीका कौन-सा है? वे कहते हैं, ज्यादा उत्पादन करना हो तो दो काम करने होते हैं- पहला 'प्राकृतिक साधनों का बेरहमी से शोषण'। दुनिया का हिसाब लगाकर देख लीजिए। दुनिया के जो विकसित देश कहलाते हैं, उन्होंने दुनिया के प्राकृतिक संसाधनों का उतनी ही बेरहमी से शोषण किया है, इससे पर्यावरण का संकट तो होगा ही, प्रदूषण का संकट तो होगा ही। आप कर लीजिए प्रकृति सम्मेलन, इससे क्या निकलेगा? क्योंकि आपका विकास के बारे में चिंतन ही दोषपूर्ण है। आपने प्राकृतिक साधनों का शोषण करने की

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 21

तकनीक अपनाई है।

दूसरा काम उत्पादन के लिए बड़े-बड़े कारखानों का निर्माण। आज की भाषा में किसे कहते हैं बड़ा कारखाना? इसके दो काम होते हैं, एक तो वह ऊर्जाभक्षी होता है, 'एनर्जी' का ज्यादा प्रयोग होता है दूसरा, मशीनचालित होता है। ऊर्जा का प्रयोग ज्यादा करोगे तो 'एनर्जी क्राइसिस' आएगी, दुनिया भर में 'ऊर्जा संकट' है, अब अपने देश में भी यह संकट आ गया है। आपने तरीका गलत 'ॲडॉप्ट' कर लिया - मनुष्यों का प्रयोग कम, मशीनों का ज्यादा। इससे बेरोजगारी आना अनिवार्य है, दुनिया भर में आ गई, अपने देश में भी आ गई है।

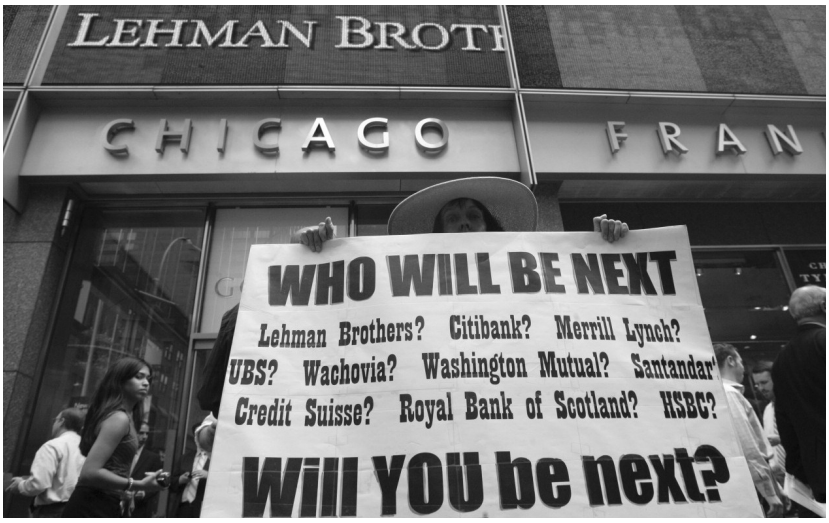

विकास की गलत अवधारणा के कारण अमेरिका के 40 से अधिक बैंक धराशायी हो गए।

कुल मिलाकर विचार करें तो वर्तमान अर्थतंत्र केंद्रीकरण का अर्थतंत्र है। वर्तमान अर्थव्यवस्था, विकास का वर्तमान 'मॉडल' गलत दृष्टिकोण पर आधारित है, उपभोक्तावाद पर आधारित है; इसलिए यह धारणाक्षम 'सस्टेन' कर ही नहीं सकता, यह धारणक्षम हो ही नहीं सकता। यह धारणाक्षम है ही नहीं, शाश्वत नहीं है, टिकाऊ नहीं है। सारी दुनिया में चिंता हो रही है कि क्या करें, फिक्र हो गई है, सभी परेशान हैं। समूची दुनिया के विचारक, समाजवेत्ता आज इस बात से परेशान हैं कि जिस रास्ते पर हम चल रहे हैं, उससे देश का और दुनिया का कल्याण होने वाला नहीं है, भला होने वाला नहीं है। क्या कोई दूसरा रास्ता हो सकता है? रास्ता है। भारत के पास रास्ता है। भारत के पास आना पड़ेगा और भारत के पास आओगे तो पं. दीनदयालजी के चिंतन की ओर स्वाभाविक ही दृष्टि जाएगी।

पं.दीनदयाल जी हमें संकेत दे गए हैं, दिशा निर्देश कर गए हैं, कुछ छोटी-मोटी बातें बता गए हैं। उनके आधार पर विचार करें तो क्या उसमें से विकास का कोई नया 'मॉडल' उभरता है ? मैंने कुछ मित्रों के साथ इस पर विचार करना आरंभ किया तो ध्यान में आया कि जब किसी नई राह की तलाश की जाती है, कोई नया 'मॉडल' देने का प्रयास किया जाता है तो सबसे पहला सवाल खड़ा होता है 'कंसेप्ट' का, अवधारणा का। संकल्पना देनी पड़ती है। आज पुरानी संकल्पना 'फेल' है। पहले कहते थे- 'प्रोग्रेस' हो रही है। फिर कहा 'प्रोग्रेस' ठीक नहीं है, तो 'ग्रोथ' आ गया। फिर कहा 'ग्रोथ' ठीक नहीं है, इसलिए 'डेवलपमेंट' आ गया। वह भी ठीक नहीं लगा तो 'ह्यूमन डेवलपमेंट' आ गया। वह भी ठीक नहीं लगा तो 'क्वालिटी ऑफ लाईफ' आ गया।

सब लोग कह रहे हैं कि हम जो कहना चाह रहे हैं, उसके लिए हमें कोई शब्द ही नहीं मिल रहा है। सारी दुनिया के विचारक 'कंसेप्ट' को लेकर 'भ्रमित' हैं। क्या भारत दे सकता है? भारत क्या दे सकता है, इसके

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 22

बारे में मैंने विचार किया और मैंने एक 'कंसेप्ट' दिया 'कंसेप्ट ऑफ सुमंगलम्' -मंगल की अवधारणा।

जब हम किसी को कहते हैं कि तुम्हारा मंगल हो तो मंगल केवल पैसे से नहीं होता, मंगल के लिए पैसा भी चाहिए, पर केवल पैसा ही नहीं चाहिए। यह 'मल्टीडायमेंशनल' बहुआयामी है। इसमें आर्थिक 'कंसेप्ट' भी हैं, सामाजिक 'कंसेप्ट' भी है, सांस्कृतिक और राजनीतिक कंसेप्ट है, प्रशासनिक कंसेप्ट है, पारिवारिक कंसेप्ट भी है। तुम्हारा मंगल हो क्योंकि भगवान राम का जन्म अपने यहाँ पर हुआ। तुलसीदास जी ने सोचा कि राम ने यहाँ जन्म क्यों लिया और 'रामचरित मानस' में राम के जन्म का कारण बताया 'रामजन्म जग मंगल हेतु', संसार का मंगल करने के लिए राम का जन्म हुआ।

हमारे संपूर्ण साहित्य का विचार करेंगे, चाहे वह सनातन धर्म का साहित्य हो या बौद्ध धर्म, जैन दर्शन का, उनमें यह मंगल का 'कंसेप्ट' 'कॉमन' है। इसलिए मैंने सोचा, मंगल करेंगे, सुमंगल का 'कंसेप्ट' देंगे। मंगल विकास का नया रास्ता बनाएंगे। किसको कहेंगे मंगल विकास, सुमंगल का 'कंसेप्ट' क्या है?

भारतीय चिंतन के हिसाब से तो हमने उसको परिभाषित किया है- अपनी प्रकृति, प्रवृत्ति, संस्कृति, अपने सवाल, संसाधन, परिवेश और पर्यावरण को ध्यान में रखकर समग्र संतुलित विकास का नाम है सुमंगलम्। इसी को पं.दीनदयालजी ने समझाने का प्रयास किया है एकात्म मानव दर्शन के आधार पर विचार एकात्म ढंग से ही करना पड़ेगा और इसी पर दीनदयालजी ने कहा था कि हर देश के लिए अलग-अगल मार्ग होंगे। सुख का एक मार्ग नहीं हो सकता, भिन्न-भिन्न मार्ग होंगे। आप किस स्थिति में, किस अवस्था मे हैं, हर एक देश के सवाल अलग हैं, 'रिसोर्सेज' 'एण्डॉमेंट्स' अलग हैं, समस्याएं अलग हैं। ऐसे में आप अमेरिकन 'मॉडल ' को हिंदुस्थान में कैसे हू-बहू लागू कर सकते हैं? गलत है। सोच ही मूलतः गलत है। अतः हमें विचार करना होगा एक नए प्रकार के अर्थमंत्र के बारे में। जब नए अर्थतंत्र के बारे में विचार करेंगे तो विकास के नए 'मॉडल' के बारे में भी विचार करेंगे।

मेरे हिसाब से यह 'मॉडल' हम को चार बातों की गारंटी देनेवाला होना चाहिए। उन चार बातों की गारंटी कोई 'ग्रोथ मॉडल' नहीं देता। यह सुमंगलम् का 'मॉडल', दीनदयालजी का एकात्म विकास का 'मॉडल', - चार बातों की 'गारंटी' देगा, पहली बात-सबको रोटी। मैं रोटी बोलता हूँ तो यह एक प्रतीकात्मक शब्द है, रोटी का मतलब है देश में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की मूलभूत

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 23

अपनी प्रकृति, प्रवृत्ति, संस्कृति, अपने सवाल, संसाधन, परिवेश और पर्यावरण को ध्यान में रखकर समग्र संतुलित विकास का नाम है सुमंगलम् । इसी को पं.दीनदयालजी ने समझाने का प्रयास किया है, एकात्म मानव दर्शन के आधार पर विचार एकात्म ढंग से ही करना पड़ेगा और इसी पर दीनदयालजी ने कहा था कि हर देश के लिए अलग-अगल मार्ग होंगे।

आवश्यकताओं की पूर्ति की 'गारंटी'। दुनिया का कोई देश अमेरिका और यूरोप सहित क्या अपने देश में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की तमाम मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की 'गारंटी' दे रहा है? नहीं दे पा रहा है। अतः नया विचार करना पड़ेगा। अपने देश की जो समस्याएं हैं उनका समाधान इसी में से निकलेगा।

दूसरी बात मैं बोलता हूँ -सबको स्वास्थ्य ('हेल्थ फॉर ऑल')। सरकार ने भी पिछले काफी समय से 'हेल्थ फॉर ऑल' का नारा दिया है। पर उनको 'हेल्थ' ही समझ में नहीं आता कि 'हेल्थ' है क्या? हमारी भारतीय परंपरा में स्वास्थ्य तीन प्रकार का होता है। एक को हम शारीरिक स्वास्थ्य कहते हैं, दूसरे को मानसिक स्वास्थ्य और तीसरे को हम भावनात्मक स्वास्थ्य -'इमोशनल हेल्थ' कहते हैं। पहले दो स्वास्थ्यों के बारे में दुनिया के देश थोड़ा -बहुत समझने लगे हैं -शारीरिक स्वास्थ्य के साथ 'मेंटल हेल्थ' की भी वे चर्चा करने लगे हैं। इसलिए 'मनोरोग विशेषज्ञों' की संख्या बढ़ने लगी है। पर आपकी भावना अशुद्ध होगी तो आप उत्पात करोगे न, घोटाले करोगे न, व्यभिचार करोगे न 'रेप' कांड होंगे न। पर्यावरण को नष्ट करोगे न। पहले भावना खराब होती है और तब आपकी क्रिया में दोष आता है। इसलिए भावनात्मक स्वास्थ्य भी आवश्यक है।

अतः तीनों प्रकार के स्वास्थ्यों को साधने का प्रयत्न जिस विकास मॉडल में, जिस अर्थव्यवस्था में होगा वही सबको स्वास्थ्य देगा और इसको साधने का प्रयत्न हम जब करेंगे तो हमारे ध्यान में आएगा कि स्वास्थ्य प्रणाली दो प्रकार की हैं - एक को कहते हैं 'निरोधात्मक स्वास्थ्य प्रणाली' अर्थात् आप बीमार ही न पड़ो। इसके लिए तीन बातें हैं- आहार, विहार और व्यवहार। आपका आहार, विहार और व्यवहार इतना शुद्ध हो कि आप को बीमारी आए ही नहीं बीमारी आते ही उसे निकालो।

हमारा आहार ठीक नहीं है, विहार ठीक नहीं है। हम गाड़ी में बैठकर घूमते हैं, पैदल तो चलते ही नहीं, 'व्यायाम' करते ही नहीं है। व्यवहार दोषपूर्ण रहता है। इसलिए 'निरोधात्मक स्वास्थ्य' के जितने 'मेनर्स' हैं, मर्यादाएं हैं, व्यवहार के, जीवन शैली के जितने तौर तरीके हैं, उनको फिर से सिखाना पड़ेगा जनता के बीच उतारना पड़ेगा। वैसी स्कीम बनानी पड़ेगी।

हो सकता है, इसके बाद भी कोई बीमार पड़ जाए तो ऐसे बीमारों के लिए, जिसे 'उपचारात्मक स्वास्थ्य प्रणाली' कहते हैं, वह भी लानी होगी। बीमारी हो जाए तो उपचारात्मक उपाय होने चाहिएं। इन उपचारात्मक उपायों में से केवल 'एलोपैथी' के सहारे सभी लोगों को स्वास्थ्य नहीं दिया जा सकता। 'एलोपैथी' भी चाहिए, आयुर्वेद भी चाहिए, योग भी चाहिए, 'होम्योपैथी' भी चाहिए। जिसे 'समग्र-समन्वित स्वास्थ्य' ('होलिस्टिक हेल्थ सिस्टम') कहते हैं वह लाने का प्रयास करेंगे - यह हुआ 'हेल्थ फॉर ऑल'।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 24

तीसरी बात- सबको शिक्षा। जब मैं 'सबको शिक्षा' बोलता हूँ तो उसका मतलब है सबको समाजोपयोगी संस्कारक्षम शिक्षा के समान अवसर-समान शिक्षा हो जाने से काम नहीं चलता। जिसके माँ-बाप की जेब में पैसा है उसका बेटा-बेटी तो किसी अच्छे स्कूल में दाखिला ले लेंगे, जिसके माँ-बाप की जेब में पैसा नहीं है, उसके बेटा-बेटी ने क्या अपराध किया है? हर एक बालक-बालिका के प्रतिभा-विकास की जिम्मेदारी समाज की होनी चाहिए। ऐसी व्यवस्था करनी होगी, ऐसी अर्थव्यवस्था लानी होगी। और शिक्षा कैसी हो जो वह समाजोपयोगी हो अर्थात् 'सोशली यूजफुल', हमारे देश की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा, भारत केंद्रित शिक्षा। हमारी समस्याओं का समाधान कर सकने वाले व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली शिक्षा देनी पड़ेगी, और यह शिक्षा संस्कारक्षम भी होनी चाहिए। आजकल तो उल्टा हो रहा है, जितना ज्यादा शिक्षित उतना ही ज्यादा संस्कारशून्य। मैं कई बार कहता हूँ कि अगर हम हिसाब लगाएं तो पता लगता है कि जितने उत्पात हो रहे हैं, जितने आतंकवादी गुट हैं, जितने विघटनवादी गुट हैं, जितने अलगाववादी गुट हैं, जो घोटाले, गलत काम किए जा रहे हैं उनके सरगना कौन हैं ? उनके प्रमुख कौन हैं ? बगैर पढ़े-लिखे आदमी नहीं हैं, सबके सब पढ़े-लिखे आदमी हैं। इसका मतलब- शिक्षा में से संस्कार गायब हैं। हमें समाजोपयोगी संस्कारक्षम शिक्षा के समान अवसर दे सकने वाला अर्थतंत्र, अर्थव्यवस्था लानी पड़ेगी।

अंतिम बात सबको रोजगार- 'एम्प्लॉयमेंट फॉर ऑल' की बात कही है । दीनदयालजी ने सरल भाषा में कहा - हर हाथ को काम। दुनिया में कोई देश नहीं है, कोई देश यह 'क्लेम' नहीं कर सकता कि वह अपने देश में सबको रोजगार देता है। पिछले दिनों ओबामा भारत आए थे। उस समय वे अमरीका के राष्ट्रपतिपद का चुनाव दूसरी बार लड़ रहे थे। वे भारत के लोगों से, भारत सरकार से अपने देश के लिए रोजगार मांगने के लिए आए थे। और अपने देश वापस जाकर उन्होंने 'प्रेस कॉन्फ्रेंस की और कहा, मैं भारत से रोजगार मांग कर लाया हूँ, मुझे वोट दो। अमरीका आज सब लोगों को रोजगार नहीं दे पा रहा है। यूरोप, आस्ट्रेलिया, दुनिया में सब जगह रोजगार का संकट है। भारत तो बहुत बड़ा देश है, इसलिए हमको रोजगार प्रधान अर्थव्यवस्था बनाने का प्रयत्न करना पड़ेगा।

मैं इन सबको मिलकर एक समान नाम देता हूँ -समग्र सामाजिक सुख दे सकने वाला अर्थतंत्र। व्यक्ति विशेष का सुख नहीं, गुट विशेष का सुख नहीं, वर्ग विशेष का सुख नहीं केवल अंबानी-संबानी का सुख नहीं-समग्र सामाजिक सुख - 'ग्रॉस सोशल हॅप्पीनेस'। इस के आधार पर जब विचार होगा तो देश में एक नई तरह की अर्थव्यवस्था आएगी। यह अर्थव्यवस्था कैसे आएगी? दो-तीन सरल बातें कहकर मैं अपनी बात पूर्ण करता हूँ। यह आएगा कैसे, 'इम्प्लिमेंट कैसे

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 25

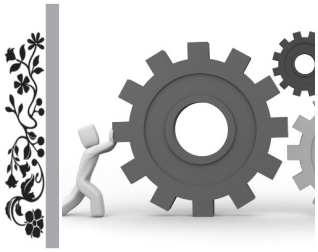

किसी एक देश में किसी एक समस्या को सुलझाने के लिए परिस्थिति विशेष में एक 'टेक्नॉलाजी उपयोगी हो सकती है और वही दूसरे संदर्भ में अनुपयोगी हो सकती है। इसलिए उसका 'रीक्लासिफिकेशन' होना चाहिए- उपयुक्त तकनीक एवं अनुपयुक्त तकनीक, ये 'हाई' और 'लो' क्लासिफिकेशन डिफेक्टिव' है, दोषपूर्ण है। इसे बदलना पड़ेगा।

होगा, इतना बढ़िया उद्देश्य है तो यह पूर्ण कैसे होगा, क्रियान्वयन कैसे होगा ?

स्पष्ट है कि इसके लिए अर्थव्यवस्था का तंत्र बदलना पड़ेगा। हमको सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक प्रणाली में बदलाव लाना पड़ेगा। बदलाव की दो-तीन बाते हैं। पहली बात-स्वदेशी स्वावलंबी विकेंद्रित अर्थतंत्र। हमारा अर्थतंत्र तीन बातों पर आधारित हो- स्वदेशी, स्वावलंबी और विकेंद्रित। मैं बहुत सरल बात कह रहा हूँ। हमें 10-15, गाँवों के 'क्लस्टर' (संकुल) बनाने होंगे। उन्हें स्वावलंबी बनाने के प्रयत्न करने होंगे। हमारे देश में यह हो सकता है। थोड़ी-बहुत कमी-बेशी रहेगी अगले 'क्लस्टर' से लेना-देना किया जा सकता है। इसके बाद भी थोड़ी-बहुत कमी रह जाए तो उस देश के बाकी इलाकों से पूरा कर लेंगे। कोई चीज अगर देश में उपलब्ध नहीं है तो उसे विश्व के बाजार से पूरा करेंगे। इस प्रकार एक 'सिस्टम' बनाने का प्रयत्न करना होगा।

दूसरी बात आजकल 'टेकनॉलॉजी' (तकनीक) को लेकर बड़ी चर्चा होती है। आप अपनी बात को 'एक्जिक्यूट' करना चाहते हैं पर आपके पास 'टेक्नॉलॉजी' कहाँ है? दुनिया की ये जो बड़ी-बड़ी 'मल्टीनेशनल कम्पनियाँ हैं, वे आकर हमको 'टेक्नॉलॉजी', के नाम पर डराती हैं, बहकाती हैं। कहती हैं, तुम बाकी बातों में आगे हो पर 'टेक्नॉलॉजी' में तो पिछड़े हुए हो। विकास करना चाहते हो तो हमारी 'टेक्नॉलॉजी' ले लो। उस 'टेक्नॉलॉजी' का नाम दे दिया 'हाई टेक्नॉलॉजी'। 'टेक्नॉलॉजी' का विभाजन, 'क्लासिफिकेशन' 'हाई टेक्नॉलॉजी' और 'लो टेक्नॉलॉजी' के रूप में कैसे किया है यह समझ से परे है।

मैं बहुत से तकनीकी संस्थानों में गया हूँ। मैंने कहा, मुझे इसका 'बेसिक्स' समझाओ कि तकनोलॉजी ऊँची या नीची कैसे होती है? 'टेक्नॉलॉजी' तो 'टेक्नॉलॉजी' होती है। किसी एक देश में किसी एक समस्या को सुलझाने के लिए परिस्थिति विशेष में एक 'टेक्नॉलाजी उपयोगी हो सकती है और वही दूसरे संदर्भ में अनुपयोगी हो सकती है। इसलिए उसका 'रीक्लासिफिकेशन' होना चाहिए-'एप्रोप्रियेट तकनॉलॉजी' और इनएप्रोप्रियेट टेक्नॉलॉजी (उपयुक्त तकनॉलॉजी एवं अनुपयुक्त तकनोलॉजी)। ये 'हाई' और 'लो' क्लासिफिकेशन डिफेक्टिव' है, दोषपूर्ण है। इसे बदलना पड़ेगा। हम एप्रोप्रियेट टेक्नॉलॉजी जरूर लेंगे। फिर हमारा देश 'टेक्नॉलॉजी' की दृष्टि से अभावग्रस्त रहा है क्या? हिंदुस्तान पुराना देश है। हमारे यहाँ 'टेक्नॉलॉजी' का जितना भंडार रहा है, उतना अन्य कहीं नहीं रहा। हमारे यहाँ इतने बड़े-बड़े भवन खड़े हुए, स्थापत्य के इतने बड़े-बड़े काम हुए- हम दिल्ली में रहते हैं, वहाँ कुतुबमीनार के पास, एक लौहस्तंभ है वह जितना धरती के ऊपर है उतना ही वह धरती के नीचे है। मोटाई भी काफी बड़ी है, वह दोनों

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 26

हमारे यहाँ 'टेक्नॉलॉजी' का जितना भंडार रहा है, उतना अन्य कहीं नहीं रहा। हम दिल्ली में कुतुबमीनार के पास,एक लौहस्तंभ है वह जितना धरती के ऊपर है उतना ही वह धरती के नीचे है। मोटाई भी काफी बड़ी है, वह दोनों हाथों में नहीं आता। 'सिंगल पीस' है। दुनिया की कोई 'लेटेस्ट स्टील इंडस्ट्री' इतना बडा सिंगल पीस जिसे हजार-पंद्रह सौ सालों तक जंग न लगे, बना सकती है क्या? हमने बनाया है तो बगैर 'टेक्नॉलॉजी' के बनाया होगा क्या?

हाथों में नहीं आता। 'सिंगल पीस' है। दुनिया की कोई 'लेटेस्ट स्टील इंडस्ट्री' इतना बडा सिंगल पीस जिसे हजार-पंद्रह सौ सालों तक जंग न लगे, बना सकती है क्या? हमने बनाया है तो बगैर 'टेक्नॉलॉजी' के बनाया होगा क्या?

जब ढाका के मलमल की चर्चा होती है तो कहा जाता है कि वह अंगूठी में से निकल जाती थी। हमारे करीगर '2500 काऊंट' का सूत काता करते थे। आज लेटेस्ट टेक्सटाइल मिल '300 काउंट' से ज्यादा नहीं जा पाती और हमको कहते हैं, तुम टेक्नॉलॉजी में पिछड़े हो। इसका अर्थ यही है हमें अपना स्वाभिमान जगाना होगा। आप लोगों ने डॉ. अब्दुल कलाम की बात पढ़ी होगी। उसमें उन्होंने यह उल्लेख किया है, 'मैं एक बार वैज्ञानिकों की सभा में भाषण देने के लिए गया था। वहां मैंने कहा कि 'रॉकेट टेक्नॉलॉजी' का प्रयोग सबसे पहले हिंदुस्थान में टीपू सुल्तान ने किया था। मैंने जैसे ही यह बात कही, एक साइंटिस्ट बोला, अब्दुल कलाम का दिमाग खराब है। भारत का आदमी इतने पुराने समय में कोई 'रॉकेट टेक्नॉलॉजी' का प्रयोग कर सकता है क्या-ये 'इम्पॉसिबल' है। गलत है, आप ऐसे ही हवाबाजी कर रहे हो। अब्दुल कलाम ने कहा, मैं इंग्लैंड गया। वहाँ की लंदन की 'लायब्रेरी' मे अंग्रेजों के रिकार्ड निकाल कर लाया जिनमें उन्होंने इसे स्वीकार किया है। फिर मैंने आकर उन 'साइंटिस्ट' महोदय के सामने वे 'रिकार्ड' पेश किए तब उन्होंने कहा, हाँ हो सकता है-तो, स्वाभिमान ही नहीं है देश का, कहीं आत्मगौरव नहीं है। मैं मजाक का एक उदाहरण सुनाया करता हूँ,

एक सन्यासी अमरीका गए थे। वहाँ एक भाषण के बाद एक सज्जन खड़े हो गए, उन्होंने कहा, आपने आत्मा, परमात्मा, दर्शन की बड़ी-बड़ी बातें की पर यह तो मान लीजिए कि आप 'टेक्नॉलॉजी' के बारे में पिछड़े हुए हैं। उन्होंने कहा, हम सत्य को मानने वाले लोग हैं। मानने में कोई दिक्कत नहीं है, पर मेरे एक सवाल का जवाब दो कि आपके देश में क्या केवल दो बर्तनों में स्वादिष्ट खाना बनाकर खिलाया जा सकता है? प्रश्नकर्ता चौंक गए। अमरीकी रसोईघर में पूरा का पूरा शस्त्रागार होता है तब भी कोई स्वादिष्ट खाना नहीं बनता। इसलिए उन्होंने कहा, 'इम्पॉसिबल' ! पर यह सही है कि यह हमारे देश में है। हमारे यहाँ दाल-बाटी चूरमा की रसोई बनती है। इसके लिए बर्तन दो ही चाहिएँ- एक दाल के लिए और दूसरा आटा गूथने के लिए। इस दाल-बाटी को चकाचक खाते हैं। इतना ही नहीं, हमारे यहां तो एक ही बर्तन में स्वादिष्ट खाना बन जाता है। खिचड़ी के लिए कितने बर्तन लगते हैं? केवल एक बर्तन। 'टेक्नॉलॉजी' किसका नाम है- 'इंपुट-आऊटपुट रिलेशनशिप' 'बेस्ट टेक्नॉलाजी' क्या है जिसे 'हाई टेक्नॉलॉजी' कहा जाता है-ज्यादा 'इंपुट' से ज्यादा 'आऊटपुट' दे रहे हो। इससे दुनिया में 'रिसोर्सक्रंच' की 'प्रॉब्लेम' आ रही है- साधनों की कमी पैदा हो गई है। हमारे पास कुछ रहा ही नहीं, सारा लोहा खा गए। सारा कोयला खा गए। छत्तीसगढ़ के लोग जानते

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 27

हैं कि कोयला कौन-कौन खा गया। सारा पानी पी गए, तेल पी गए, वृक्ष खा गए। दुनिया के सामने कोई संसाधन बचे ही नहीं। इसलिए 'टेक्नॉलॉजी' के बारे में नए सिरे से सोचना प्रारंभ करना पड़ेगा। कम 'इन्पुट' से ज्यादा आऊटपुट देने वाली भारतीय परंपरा की जो 'टेक्नॉलॉजी है, उसका विचार करना होगा।

एक तीसरा सवाल सारी दुनिया में घूम रहा है संधारणीयता का। 'सेस्टेनेबल' कैसे हो ? इसके लिए जीवनशैली बदलनी होगी। वर्तमान जीवनशैली पर चलने के लिए दुनिया के किसी भी देश में, किसी भी समय 'सेस्टेनेबल डेवेलपमेंट' या 'सस्टेनेबल' इकोनॉमिक 'मॉडल' हो- यह हो ही नहीं सकता। 'सस्टेनेबल डेवलपमेन्ट इज नॉट पॉसिबल विदाउट एनी सस्टेनेबल कन्सॅम्शन पैटर्न' उपभोगशैली को बदलो, जीवनशैली को बदलो, जरूरत होने पर ही चीजों का उपयोग करो, अनावश्यक चीजों का उपयोग न करो, यह समझना पड़ेगा, यह बताना पड़ेगा, इसे सभी ओर से व्यवहार में लाना पड़ेगा। ये व्यवहार में लाया तो दुनिया 'सस्टेनेबल' हो जाएगी, नहीं लाया तो सब गड़बड हो जानेवाला है।

गांधी जी ने यही कहा था। नेहरू जी, गांधी जी इलाहाबाद गए हुए थे। भोजन के बाद नेहरू जी गांधी जी का हाथ धुलाने के लिए दौड़े। पूरा लोटा उनके हाथों पर उड़ेल दिया। गांधी जी ने कहा, दिमाग खराब हो गया है। इतना पानी नहीं चाहिए था मुझे हाथ धोने के लिए। नेहरू जी ने कहा, बापू चिंता क्यों करते हो, यहाँ इलाहाबाद में गंगा के किनारे खड़े हैं हम लोग। बापू का जवाब था, गंगा तेरे और मेरे लिए ही है क्या? यह दृष्टि है। आप किसी चीज का उपयोग इस प्रकार से करते हैं या नहीं करते? इसलिए धारणक्षम उपभोग शैली (सस्टेनेबल कंसॅम्शन पेटर्न) लाना पड़ेगा।

चौथी बात, हमारे अर्थशास्त्रियों ने जिसे गायब कर दिया, उसे फिर से लाने के प्रयत्न करने पड़ेंगे, दीनदयालजी और भारतीय चिंतन के प्रकाश में। हमने अर्थ को धर्म से अलग कर दिया। अर्थशास्त्र का मुझ जैसा विद्यार्थी ज्योंही धर्म की बात करता है, मेरे अर्थशास्त्री मित्रों की भौंहें चढ़ जाती हैं। धर्म की बात करना 'कम्युनल' बात करना हो गया है। अर्थ का क्या मतलब है?

'इकॉनॉमिक्स' के कुछ मित्र यहॉ बैठे हैं। 'इकॉनॉमिक्स' में सबसे पहले क्या पढ़ाते हैं- इकॉनॉमिक्स' इज नथिंग टु डू विद इथिक्स' (अर्थशास्त्र का नैतिकता से कोई संबंध नहीं होता)। मैंने भी पढ़ाया है- 'ऑब्जेक्टिव एनालिसिस' करना है हमें, 'सब्जेक्टिव' नहीं होना है तो - 'इथिक्स' से कोई संबंध नहीं रखना होगा।

जिस अर्थशास्त्र का, जिस अर्थतंत्र का, जिस अर्थनीति का, जिस अर्थव्यवस्था का नैतिकता से संबंध नहीं होता, वह देश का समाज का भला करनेवाला होगा क्या? घोटाला होगा ही, फिर बेइमानी

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 28

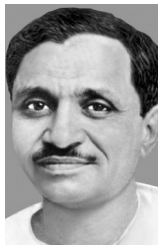

हमें नए प्रकार की ऐसी अर्थव्यवस्था की रचना करने का प्रयत्न करना पड़ेगा जो नैतिकता पर, मर्यादाओं पर आधारित हो, तभी व्यक्ति की, परिवार की, समाज की और सृष्टि की धारणा होगी। आज संधारणीयता का जो सवाल खड़ा हो गया है, वह 'इथिक्स' से दूर होने के कारण खड़ा हुआ है। 'सस्टेन' ही नहीं हो रहा है। न पृथ्वी 'सस्टेन' हो रहा है, न सृष्टि और न समाज। इसलिए हमें धर्माधारित अर्थव्यवस्था का नया मॉडल लाने का प्रयत्न करना होगा।

होगी ही, तमाम प्रकार के 'स्कॅण्डल्स' होंगे ही। आज कल 'एमबीए के स्टुडेंट् को हम' क्या पढ़ाते हैं -'यू हैव टु अचीव युवर टारगेट दिस वे और दैट वे' (आपको अपने टारगेट को किसी भी तरीके से प्राप्त करना है) जोर किस पर है- 'टारगेट अचीव' करने पर, 'मेथड' पर नहीं है। तौर-तरीकों पर नहीं है। सारी दृष्टि बदल गई है।

इसलिए दीनदयाल जी अर्थ और काम को धर्म से जोड़ने की धर्म -अर्थ-काम-मोक्ष की बात कहा करते थे। इस बारे में गांधी जी ने भी कहा था, "I must confess that I do not draw a sharp or any distinction between economics and ethics. Economics that hurts the moral wellbeing of an individual or a nation is immoral and therefore sinful." इतना स्ट्राँग स्टेटमेंट है गांधीजी का - मैं ऐसे 'डिमार्केशन' को स्वीकार नहीं करता जो अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र में भेद करता है, वह 'इम्मॉरल' है और आगे जाकर वे इसे पापपूर्ण कहते हैं। मतलब यही कि हमें एक नए प्रकार का, ऐसे अर्थशास्त्र की नए प्रकार की ऐसी अर्थव्यवस्था की रचना करने का प्रयत्न करना पड़ेगा जो नैतिकता पर, मर्यादाओं पर आधारित हो, तभी व्यक्ति की, परिवार की, समाज की और सृष्टि की धारणा होगी। आज संधारणीयता का जो सवाल खड़ा हो गया है, वह 'इथिक्स' से दूर होने के कारण खड़ा हुआ है। 'सस्टेन' ही नहीं हो रहा है। न पृथ्वी 'सस्टेन' हो रहा है, न सृष्टि और न समाज। इसलिए हमें धर्माधारित अर्थव्यवस्था का नया मॉडल लाने का प्रयत्न करना होगा।

एक और बात कहकर मैं अपनी बात पूर्ण करूँगा। नए अर्थतंत्र और नई अर्थव्यवस्था के संदर्भ मे आज सबसे बड़ा सवाल आता है विषमता, गैर-बराबरी दूर करने का -इसी से गरीबी की समस्या हल होगी, असमानता की समस्या हल होगी।

आजकल विद्रोह के हालात बन रहे हैं। पिछले सत्र में किसी ने आतंकवाद, अलगाववाद का जिक्र किया। इसका करण भी घोर विषमता ही है। हमारे देश में कम से कम और अधिक से अधिक आयवाले के बीच 90 लाख गुना अंतर है। क्या हम इसकी कल्पना कर सकते हैं? आक्रोश तो नौजवान के भीतर आएगा, क्यों नहीं आएगा? एक तरफ मटरगश्ती करनेवाले परिवार हैं और दूसरी तरफ ऐसे परिवार हैं जिन्हें अपने बच्चों के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के भी लाले पड़ जाते हैं - घोर विषमता।

इस घोर विषमता को दूर करने का कोई मार्ग दीनदयालजी के विचारों में से निकलता है क्या ? भारतीय संस्कृति में से निकलता है क्या? निकलता है। उसकी ओर ध्यान देना पड़ेगा और जब हम विषमता को 'एड्रेस' करेंगे तो सबसे पहले इस सवाल को 'एड्रेस' करना पड़ेगा कि देश के संसाधनों पर अधिकार किसका है। डॉ.मनमोहन सिंह की तरह यह नहीं कहेंगे कि देश के संसाधनों पर पहला अधिकार एक 'पर्टिक्युलर' समुदाय का है-इससे काम नहीं बनेगा'। यह गलत है,। किसके हैं

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 29

संसाधन? ये 'रिसोर्सेज' किसके हैं ?

दो तरह के 'अॅप्रोच' दुनिया में चले -एक व्यक्तिगत स्वामित्व यानी 'कॅपिटलिज्म' व्यक्ति का अधिकार- मेरी खदान, मेरी दुकान, मेरा खेत। मैं इसका मालिक- 'इंडिविज्युअल ओनरशिप' का 'कंसेप्ट' चला। इसने शोषण दिया, असमानता दी। इसके विरोध में 'कम्युनिज्म' का कंसेप्ट' चला 'स्टेट ओनरशिप' -सब सरकार ले ले, व्यक्ति का कुछ नहीं। रूस में यही हुआ, चीन बेचारा न इधर का रहा न उधर का, न घर का न घाट का। 'चाइनीज इकॉनॉमी' को आज 'कम्युनिस्ट इकॉनॉमी' नहीं कह सकते, वह बीच में लटक रहा है। उसे छोड़ दें तो कम्युनिज्म ने फिलॉसफी दी कि सब स्टेट ले ले क्या हुआ इससे-काम करने का 'इन्सेंटिव और' इनिशियेटिव' (प्रेरणा और पहल) खत्म हो गया। 'रशियन इकानामी' और उसके साथ का सारा का सारा 'कम्युनिस्ट एम्पायर' ढह गए।

भारत ने क्या कहा-साधन न व्यक्ति के हैं न सरकार के, संसाधन तो परमात्मा के हैं। तुलसीदास जी ने सरल भाषा में कहा, 'सियाराममय सब जग जानी'। उसी सरल भाषा में आचार्य विनोबा भावे ने समझाया -सबै भूमि गोपाल की-यह नया कन्सेप्ट था। पुराने समय में रहा है, पर भूल गए। असल में संसाधनों का असली मालिक वह परमात्मा ही है पर आप कहोगे, साहब आपने तो हमारा सब कुछ ले लिया! लेकिन ऐसा नहीं है, छीना कुछ नहीं।

आपकी खदान है, दुकान है, खेत है- कौन सी 'ओनरशिप' है आपके पास ? 'डेलिगेटेड ओनरशिप' है, 'अल्टिमेट ओनरशिप' नहीं है। इसका सदुपयोग करो, जरूरत है उतनी ही चीजों को उपयोग करो, बाकी समाज को फिर से दे दो- 'ओनरशिप' के 'कंसेप्ट' को अगर हमने इस तरह से 'एड्रेस' कर लिया तो फिर ममत्व से समत्व की धारा बह निकलेगी- कैसे बह निकलेगी-एक सरल उदाहरण से कहूँगा पर उसके पीछे के मर्म को समझने का प्रयत्न करें :-

मान लीजिए कि आपको मिठाई खाने की इच्छा हो गई। आप हलवाई की दुकान पर गए। वहाँ से बढ़िया मिठाई का एक किलो का डिब्बा लेकर आए। रास्ते में आपका दोस्त मिल गया। उसने पूछा, क्या लाए हो? आपका कहना पड़ेगा कि मिठाई लाया हूँ। इस पर वह कहेगा, लाया है तो दे भईया। क्या आप देना चाहोगे? बांटना चाहोगे? नहीं, क्योंकि आपने 'इंडिविजुअल ओनरशिप' मानी है, घर जाकर अकेले खाओगे।

दूसरी ओर यही मिठाई आपने परमात्मा के मंदिर में प्रसाद चढ़ाने के लिए लाई है और अगर आपका दोस्त पूछे तो आपका जबाव क्या होगा ? मिठाई का डिब्बा नहीं कहेंगे आप कहोगे, भगवान का प्रसाद है। 'ओनरशिप' बदल गई। आप मंदिर गए। प्रसाद चढ़ा दिया। पंडितजी ने घंटी बजाकर भोग लगा दिया और उसमें से अपना 'शेयर' निकाल लिया। कोई पंडित कम निकालता है, कोई ज्यादा लेकिन आजतक क्या किसी ने इस पर कोई 'ऑब्जेक्शन' उठाया है? किसी ने प्रसाद का उपभोग क्या अकेले किया है? देनेवाला भी प्रसन्न, लेनेवाला भी प्रसन्न, जितना मिल गया उसी में प्रसन्न।

'इकॉनामिक्स' के कई प्राध्यापक यहाँ बैठे हैं। उपभोग का अंतिम उद्देश्य क्या बताया है- अधिकतम संतुष्टि - ठीक है न। जब आप अपने संसाधनों का उपयोग प्रसाद भाव से, यज्ञशेषभाव से करेंगे, बाँटकर करेंगे तो ममत्व से समत्व की धारा चलेगी और सही वितरण की समस्या का समाधान होगा। समाज में तनाव घटेगा। मंगल विकास की नई धारणक्षम विकेंद्रित अर्थव्यवस्था लाने का पं. दीनदयालजी का सपना पूर्ण होगा।

लेखक चिंतक व वरिष्ठ अर्थशास्त्री हैं।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 30

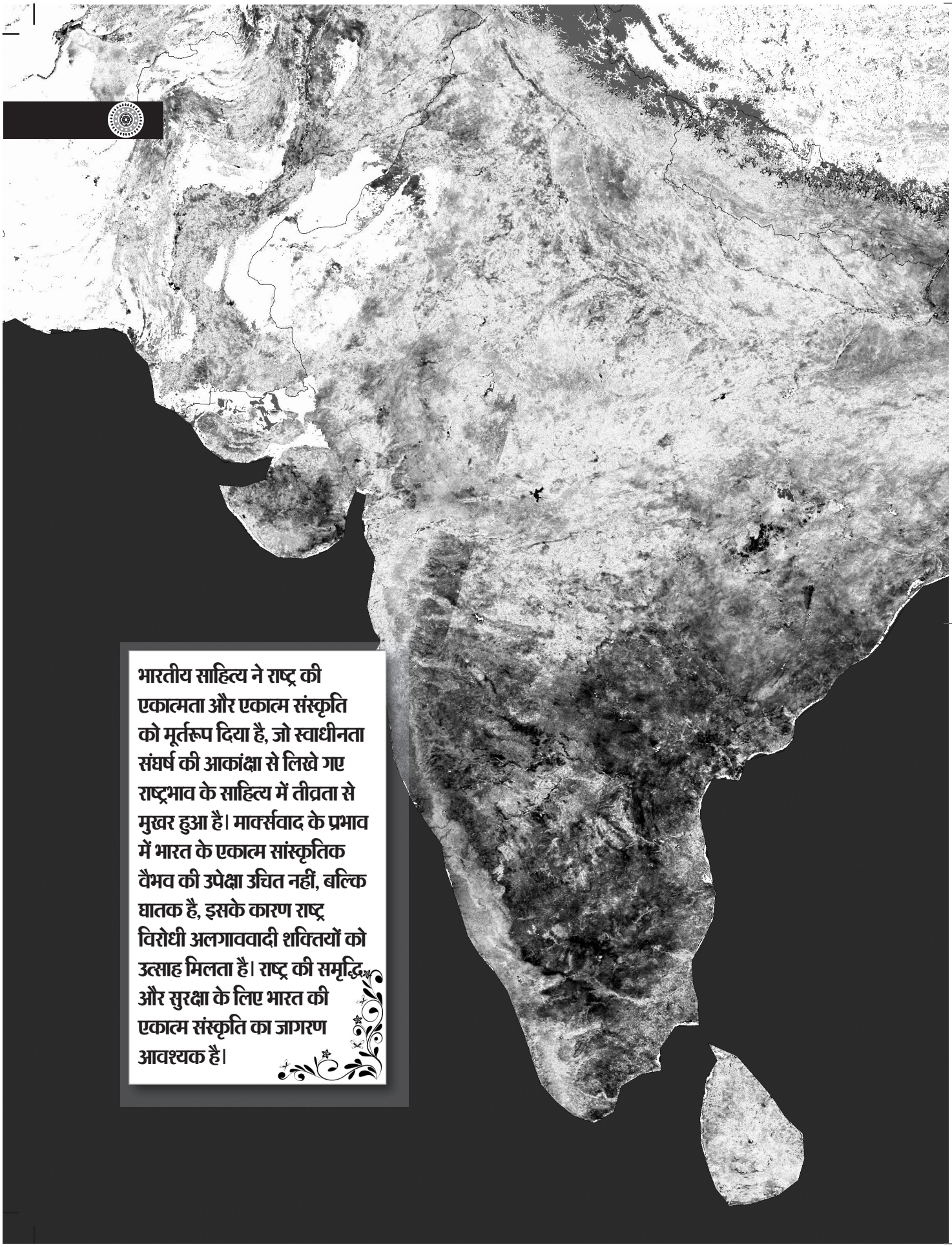

भारतीय साहित्य ने राष्ट्र की एकात्मता और एकात्म संस्कृति को मूर्तरूप दिया है, जो स्वाधीनता संघर्ष की आकांक्षा से लिखे गए राष्ट्रभाव के साहित्य में तीव्रता से मुखर हुआ है। मार्क्सवाद के प्रभाव में भारत के एकात्म सांस्कृतिक वैभव की उपेक्षा उचित नहीं, बल्कि घातक है, इसके कारण राष्ट्र विरोधी अलगाववादी शक्तियों को उत्साह मिलता है। राष्ट्र की समृद्धि और सुरक्षा के लिए भारत की एकात्म संस्कृति का जागरण आवश्यक है।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 31

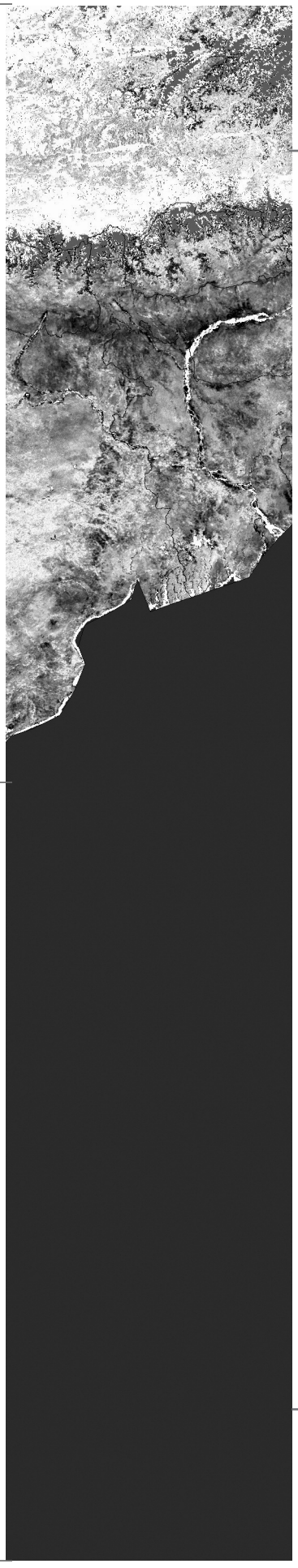

डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

राष्ट्रीय एकात्मता और संस्कृति की वैचारिक पृष्ठभूमि

विविध अवयवों के संगमन से राष्ट्र शक्ति बनती है, इनमें अंगांगी संबंध होता है, यह धारणा कोई नई नहीं है, यह वैदिक काल से ही भारत में स्थापित है- 'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्' (वाग्सूक्त) की भाँति वेदों में व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि और परमेष्ठी के मध्य संबंध द्योतित करनेवाले विश्वदेव को संबोधित अन्य वैदिक सूक्त भी हैं जिनसे प्रेरित संस्कार-यज्ञों, उत्सव-पर्वों द्वारा लोकमानस में एकात्मता प्रवाहित होती रही है। यह ऋषि प्रदत्त अमूल्य धरोहर हमें संगठित रहने का संदेश देती है- 'एक साथ चलो, एक साथ बात करो, एक मन से रहो'- संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् (ऋ. 10.191.2)।

यह एकात्मता भावपरक नहीं है, इसके पीछे ठोस आधार है, ऋषियों का प्रत्यक्ष प्रज्ञान है, योगियों द्वारा जाना हुआ सत्य है और तर्क सिद्ध दर्शनशास्त्रों द्वारा प्रतिपादित तथ्य है। एकात्मता के परमाधार को उपनिषदों ने बार-बार बताया है कि विविध रूपों में दिखनेवाली सृष्टि के मूल में केवल एक ही सत्ता है, वही एक पूर्ण है, वही एक सर्व रूपों में प्रकट होती है और पूर्णता में भी सदाशेष रहती है- 'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते' (बृहदा. 5.1.1)। उस परमसत्ता के कई संबोधनों में से एक संबोधन पुरुष है, यहाँ पुरुष का अर्थ नर नहीं, अपितु जगतरूपी पुरी में सर्वत्र व्याप्त हो शयन करने वाला चैतन्य है-

पुरुष एवेदँ सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।

(ऋ. 10.90.2)

यह पुरुष तीनों कालों में सर्वत्र स्थित है। इसीलिए जगत् में जो कुछ है उन सभी को ईश का आवास कहा गया,

माना गया कि प्रत्येक प्राणी के हृदय में वही एक सत्ता समाहित है- पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः (कठ. 2.3.17)। लेकिन वह एक नहीं रहता, इसमें बहुत होने की कामना है- 'एकोऽहं बहुस्याम्' अथवा 'जन्माद्यस्य यतः'। विविध रूपों में दृष्टिगोचर होनेवाला यह जगत् उसी पुरुष के सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है- 'ततो विश्व व्यक्रामत्'। एक ही सर्व भूतांतरात्मा को स्त्री-पुमान्, कुमार-कुमारी और लाठी के सहारे चलनेवाले बूढ़े के रूप में संबोधित करते हुए श्रुति कहती है कि 'हे परमेश्वर! तू ही अवस्था भेद से विश्वभर के अनेक चेहरे हो जाते हो'-

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवति विश्वतोमुख।।
(श्वेता. 4.3)।

एकात्म संस्कृति का यह आधार बहुधा अज्ञानांधकार में खो जाता है, समाज खंड-खंड टूटने लगता है, विषमताएँ बढ़ने लगती हैं, लोक की व्यवस्था बिखर जाती है, तब कोई ब्रह्मवेता आत्मज्ञानी एकात्म संस्कृति का पुनर्जागरण करने के लिए समाज में आगे आता है। ऐसे ही अज्ञानांधकार के युग में जब भौतिक सुख साधनों के लिए आत्मिक संबंधों और कर्तव्यों का नाश हो गया था, श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निष्काम कर्म का ज्ञान दिया था। गीता का ज्ञानामृत श्रुतियों के प्रज्ञान का युगावतरण ही है। कहा गया है कि उपनिषदरूपी सभी गौओं से गोपालनंदन श्रीकृष्ण ने ज्ञान-दुग्ध का दोहन किया और अर्जुन रूपी बछड़े को पिलाया-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्ध गोपालनन्दनः। पार्थोवत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

ऋषियों की वाणी के युगावतरण का यह कार्य महामनीषियों ने निरंतर किया है। आद्य जगतगुरु शंकराचार्य के कृतित्व के रूप में विख्यात अद्वैत तथा वेदांत के मूल स्रोत की याद दिलाते हुए पं. दीनदयाल उपाध्याय लिखते हैं कि 'शंकर के नाम के साथ अद्वैत तथा वेदांत का इतना अटूट संबंध जुड़ गया है कि शंकर को ही वेदांत तत्त्वविज्ञान का जन्मदाता समझने लग गए हैं, वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। वैसे तो सब तत्त्वज्ञानों के समान वेदांत तत्त्व आदि का स्रोत वेदमंत्र ही हैं किंतु इसको संसार के समक्ष प्रगट करनेवाले महर्षि बादरायण थे' (जगतगुरु शंकराचार्य, पृ. 21)। स्पष्ट है कि ज्ञान के आदि स्रोत वेद से निरंतर युगीन आवश्यकताओं अनुरूपज्ञान का प्रतिपादन होता रहा है। यही कार्य स्वामी विवेकानंद ने भी किया, उन्होंने शिकागो धर्म सम्मेलन में वेदांत की दृष्टि से हिंदू धर्म में निहित वैश्विक एकात्मता के विचार प्रस्तुत कर पराधीन भारत का आत्मगौरव सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाया। उन्होंने शिवमहिम्न स्तोत्र के एक श्लोक को उद्धृत किया- **रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नानापथजुषाम्** अर्थात् 'जिसप्रकार विभिन्न स्रोतों से निकलनेवाली नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं, हे प्रभो! उलटी-सीधी राहों पर चलनेवाले अनेक रुचियों के लोग भी अंततः तुम्हीं में प्रवृत्त हो जाते हैं।' एकत्व और विविधता परम सत्ता का चरित्र है, इसलिए भारतीय मानस में एकात्मता और संस्कृति की इंद्रधनुषी छटाएँ दोनों एक साथ स्थापित हैं, इन दोनों से कुछ भी बाहर नहीं है।

एकात्म शब्द मूलतः अद्वैत ही है, एकात्मता की मनोभूमि सर्वभूत जगत् को आत्मवत जानकर आचरण करने की प्रेरणा देती है। आत्म सत्ता एक है। 'एक' शब्द की निष्पति इण गतो धातु से कन् प्रत्यय द्वारा औणादिक कृदंत के रूप में होती है। अमरकोश में 'एक' का आशय मुख्य, अन्य और केवल है- एके मुख्यान्य केवलाः (3.43)। अनेक में एक का संधान करनेवाले को ही वास्तविक द्रष्टा माना गया है- 'यच्छ्रेय एतयोरेवंफतन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् (गीता, 5.1)। एकं साख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति (गीता 5.5)। इसी प्रकार आत्मा शब्द निरुक्त (3.15) के अनुसार 'अत यावद् व्याप्त भूत इति आत्मा' आप व्याप्तौ

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 33

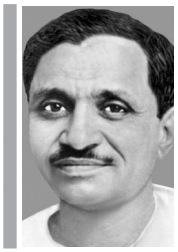

हमने राज्यों को संघ से निकल जाने का अधिकार नहीं दिया है, इतना ही नहीं, इन राज्यों की सीमाएँ और नाम क्या हो, यह निर्णय संसद ही कर सकती है किंतु इतना होने पर भी हमने अपने संविधान को संघात्मक बनाया है। हमने प्रांतों की कल्पना भारतमाता के अंगों के रूप में की है, अलग-अलग माताओं के रूप में नहीं। अतः हमारा संविधान संघात्मक न होकर एकात्मक होना चाहिए।

धातु से निषपन्न है, अथवा अत् धातु से मानिन् प्रत्यय द्वारा आत्मन् की निष्पति होती है। यास्क ने एक महादेवता को आत्मा कहा है (नि.7.4) और यह भी कि 'एभ्यः पर आत्मा तान्यस्मिन्नेकी भवन्ति'- जिसमें सभी एकत्व लाभ करते हैं, वह आत्मा इंद्रियों से परे है (नि. 10.26)। वस्तुतः आत्मा दो या अनेक नहीं, जिनमें तालमेल के समझौते होते हों या कोई असहज अंतर्क्रिया होती हो अथवा किसी द्वंद्व का अवसर बनता हो। यहाँ तो सर्वत्र एक ही आत्मा व्याप्त है, अतः 'एक' और 'आत्मा' दोनों शब्द एक दूसरे से अभिन्न हैं। यदि आत्म सत्ता की उपेक्षा कर दी जाए और भौतिक साधनों में एकत्व या साम्य अथवा समता की खोज की जाए तो इस अनात्म आधार से कभी भी उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता, क्योंकि भौतिक साधनों का संसार विविध और विषम है, निरंतर परिवर्तनशील है।

इसी आप्त ज्ञान की पूर्वपीठिका पर पं. दीनदयाल उपाध्याय ने राजनीति, अर्थनीति और समाज व्यवस्था आदि के प्रश्नों के समाधान हेतु युगीन परिप्रेक्ष्य में एकात्म मानव दर्शन का प्रतिपादन किया। दीनदयाल जी जब भी एकात्मता की दृष्टि से किसी विषय पर विचार करते हैं, वे अनेकत्व का द्वंद्व स्वीकार नहीं करते, अपितु एकत्व के अनुशासन में सबको अंगांगी भाव से यथास्थान विनिवेशित करते हैं। उन्होंने कहा है कि 'पैर, हाथ, सिर व उरु इनके बीच कोई संघर्ष है क्या? यदि संघर्ष मानकर चलें तो शरीर चलेगा ही नहीं। पैरों में व सिर में संघर्ष नहीं होता। संघर्ष का तो प्रश्न ही नहीं, बल्कि दोनों में कुछ है तो 'एकात्मता' है। ये अंग एक दूसरे के पूरक ही नहीं, उनमें पूर्ण अभिन्नता एवं आत्मीयता है।' इसी एकात्मता की कसौटी पर दीनदयाल जी ने भारत के वर्तमान संविधान की आलोचना करते हुए कहा है कि 'हमने राज्यों को संघ से निकल जाने का अधिकार नहीं दिया है, इतना ही नहीं, इन राज्यों की सीमाएँ और नाम क्या हों, यह निर्णय संसद ही कर सकती है किंतु इतना होने पर भी हमने अपने संविधान को संघात्मक बनाया है अर्थात् जो बात व्यवहार में रखी है, वह तत्त्वतः अमान्य कर दी है। संघात्मक में इकाइयों की निजी सत्ता और संप्रभुता होती है। वे एक समझौते के अनुसार अपने अधिकार केंद्र या संघ को सौंप देती हैं। ... इस विचार से संविधान भारत के प्रांत की सत्ता को मूलभूत मानता है और केंद्र को राज्य का समूह मात्र। यह सत्य के विपरीत है, भारत की एकता और अखंडता की धारणा का विरोधी है। इसमें भारतमाता की जीवमान चैतन्यमयी कल्पना नहीं। संविधान के प्रथम अनुच्छेद के अनुसार 'इंडिया अर्थात् भारत राज्यों का संघ होगा।' अर्थात् बिहारमाता, बंगमाता, पंजाबमाता, कन्नड़माता, तमिलमाता आदि माताओं को मिलाकर भारतमाता बनेगी; यह हास्यास्पद कल्पना है। हमने प्रांतों की कल्पना भारतमाता के अंगों के रूप में की है, अलग-अलग माताओं के रूप में नहीं। अतः हमारा संविधान संघात्मक न होकर एकात्मक होना चाहिए।' निश्चय ही संविधान और राष्ट्रीय एकात्मता पर दीनदयाल जी

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 34

द्वारा दिए गए इन सामयिक विचारों की पृष्ठभूमि में आप्त वचनों का प्रमाण हैं। यह कार्य भी ऋषियों की वाणी का युगावतरण है।

एकात्म राष्ट्र की धारणा भारतीय दर्शन से संपोषित है। इस दर्शन का प्रत्यक्ष साक्ष्य है तो परोक्ष साधना भी। प्रत्यक्ष रूप में ही श्रुति कहती है- 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋ 1.115.1) 'गतिशील और स्थितिशील सभी तत्त्वों से बने जगत् की आत्मा सूर्य है।' इस वेद वचन के अंतरंग विन्यास में सविता है जो आत्मा को आकृति दे क्रियाशील बनाती है- 'सवित आत्मेव शेवी द्विधिषाय्योभूत' (ऋ 1.73.2)। अन्यथा, वह जगताधार आत्मा स्वयं निष्काम, अचल, रस-तृप्त, अमृत है- 'अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः' (अथर्व. 10.8.44)। सर्वात्मा के बोध से प्रेरित राष्ट्रीय एकात्मता की धरा आज भी श्रुति की शिखरों से उतर सनातन संस्कृति को अस्तित्व दे रही है। यह हमें याद दिलाती है कि 'ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं'- ऋषियों के बल और दीक्षा से राष्ट्र में बल और ओज उत्पन्न होता है। यही ऋषि वाणी प्रत्येक युग में राष्ट्र-जीवन की ग्लानि को मिटाने के लिए अनेक महापुरुषों के कंठ से निसृत होती है।

'राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? यह कोई भूमि का टुकड़ा, भाषा का अलंकार या मन की कहानी नहीं है। जैसे भवानी महिषमर्दिनी का प्रादुर्भाव करोड़ों देवताओं की शक्ति के मिलने से हुआ था, उसी प्रकार भारत माता की एक शक्ति है जो करोड़ों देशवासियों की शक्ति से मिलकर बनी है। भारत नष्ट नहीं हो सकता। हमारी जाति समाप्त नहीं हो सकती, क्योंकि मानव जाति के भविष्य के लिए वह बहुत आवश्यक है, उसे सबसे ऊँची और शानदार भूमिका के लिए चुना गया है।- महर्षि अरविंद

महर्षि अरविंद कहते हैं- 'राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? यह कोई भूमि का टुकड़ा, भाषा का अलंकार या मन की कहानी नहीं है। जैसे भवानी महिषमर्दिनी का प्रादुर्भाव करोड़ों देवताओं की शक्ति के मिलने से हुआ था, उसी प्रकार भारत माता की एक शक्ति है जो करोड़ों देशवासियों की शक्ति से मिलकर बनी है।' वे कहते हैं- 'भारत नष्ट नहीं हो सकता। हमारी जाति समाप्त नहीं हो सकती, क्योंकि मानव जाति के भविष्य के लिए वह बहुत आवश्यक है, उसे सबसे ऊँची और शानदार भूमिका के लिए चुना गया है। भारतवर्ष से ही सारे संसार का धर्म निकलेगा, वह शाश्वत सनातन धर्म जो सब धर्मों में, विज्ञान और दर्शन में समन्वय करेगा और मानव जाति को एक अंतरात्मा बनाएगा।' यही उद्‌बोधन हम महामना मदनमोहन मालवीय की वाणी से भी सुन सकते हैं। महामना ने कहा था- 'हिंदुत्व के विनाश से विश्व की हानि है। यदि विश्व का प्रश्न न होता तो हिंदुओं के नष्ट हो जाने या हिंदुत्व के मिट जाने को तनिक महत्त्व न देता।'

ऐसी उद्‌घोषणाएँ स्वाधीनता संघर्ष के दिनों क्यों हो रही थी? इसलिए कि 19वीं सदी के सभी युगचेता महापुरुष अँग्रेजों के भारत विरोधी विचारों तथा कार्य से आहत थे। उन दिनों अँग्रेज भारत राष्ट्र के अस्तित्व को ही नकार रहे थे इसलिए कि भारतवासियों के मन से एक राष्ट्र होने का विचार सदा के लिए समाप्त हो जाए और वे चिरकाल तक पराधीन बने रहें। 1888 ई. में जॉन स्ट्रैची कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में लगातार व्याख्यान देकर दुनिया को बतला रहा था कि 'भारत जैसी चीज न तो है और न कभी थी, न तो भारत कोई राष्ट्र है ना ही भारत के लोग हैं, जिनके बारे में हम सुनते हैं। यह असंभव है कि पंजाब, बंगाल, मद्रास, और पश्चिमोत्तर प्रांतों के लोग अपने को एक

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 35

महान राष्ट्र का अंग मानें।'

भारत राष्ट्र की एकात्मता कोई नई धारणा नहीं है, आज से लगभग दो हजार तीन सौ चौसठ वर्ष पहले आचार्य चाणक्य ने तक्षशिला विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में स्नातकों को संबोधित करते हुए कहा था- ''भारतवर्ष के पुत्र! हम भाग्यशाली हैं कि हमने इस धरा पर जन्म लिया है, जो स्वर्ग और मुक्ति का द्वार है। ईश्वर भी इन्हीं शब्दों में भारत की महिमा का गान करते हैं। यह पवित्रता, त्याग और साहस की भूमि, ज्ञान-विज्ञान, कला, व्यापार और औषधियों से परिपूर्ण भूमि हमारे पूर्वजों की कर्मभूमि है, जहाँ दानवी शक्तियों को दैवी शक्ति ने पराजित किया। उत्तुंग शिखरों और सुंदर वनों से आच्छादित पवित्रांद, शौर्य,

हिंदुत्व के विनाश से विश्व की हानि है। यदि विश्व का प्रश्न न होता तो हिंदुओं के नष्ट हो जाने या हिंदुत्व के मिट जाने को तनिक महत्त्व न देता।

उत्सर्ग, राष्ट्रभक्ति, श्रेष्ठ गुणों और दया के लिए प्रसिद्ध स्वर्ग से भी श्रेष्ठ यह भारत भूमि है और उसी भारत-भूमि के उत्थान के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करने की भावना के साथ माँ भारती के पुत्र आज अपनी-अपनी जन्मभूमि को वापस जाएँगे। पर, मैं यहाँ से किसी मागध, किसी मालव, किसी लिच्छवी, किसी कुरु, किसी पांचाल को जाने नहीं दूँगा। आज यहाँ से सिर्फ भारतीय जाएँगे। अनेक प्रकार की भाषा बोलने और अनेक प्रकार के धर्मों को धारण करने वाले जनसमूहों को भारत भूमि एक घर में निवास करने वाले सहोदरों के समान धारण करती है।

हमारी मातृभूमि राजनीतिक रूप से अनेक जनपदों में बँटी अवश्य है, पर सांस्कृतिक रूप से वह एक है। एक ही संस्कृति के प्रवाह में माँ भारती के पुत्र पल्लवित हो रहे हैं तो जनपदों की सीमाएँ उन्हें कैसे बाँट सकती है। मैं सावधान कर रहा हूँ अपने सामने बैठे भारत पुत्रों को कि जनपदों की सीमाओं के आधार पर भारतीयों को बाँटने का प्रयास मत करना। संस्कृति के सूत्र को सम्हालकर रखना, जो मानव को मानव से जोड़ता है। क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि जनपदों की राजनीति मानव को मानव से तोड़ रही है। अतः राजनीति के उस दायित्व का निर्वाह अब संस्कृति को करना होगा। संस्कृति को ही सेतु बनाना है क्योंकि संस्कृति कोई भाषा नहीं है, संस्कृति कोई जाति नहीं है, संस्कृति कोई धर्म नहीं है। भारतीय अध्यात्म तो दावे के साथ कहता है कि मानव का ईश्वर से एकाकार निश्चित है, पर उसके पहले मानव का मानव से एकाकार तो हो। क्या जनपदों की सीमाएँ मानव को मानव से मिलने से रोक सकती हैं? और यदि ऐसा है तो उन सीमा रेखाओं को मिटाना होगा जो हमारे हृदय पर अंकित है। जो स्नातक यहाँ से जाएँ तो जितने जोर से हो सके गाएँ- हमारी सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकता का स्वर, समवेत स्वर ताकि गुरुकुल के आचार्यों को विश्वास हो कि उन्होंने एक राष्ट्र का निर्माण किया है, उसे खंड-खंड में बाँटा नहीं है। माँ भारती तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करे। उतिष्ठ भारत!'' (अनुवादक शारदानंद, वाशिंगटन, डी.सी., हिंदी जगत, अक्तूबर-दिसंबर 2001)। आधुनिक शैक्षिक वातावरण को आचार्य चाणक्य और तक्षशिला विश्वविद्यालय याद नहीं है, लेकिन गुजरा हुए साम्राज्यवादी अँग्रेज की तर्ज पर पराधीनता की पैरोडी बनाने वाले देशी साम्राज्यवादी लोग आज भी शिक्षा के विषयों और भाषा-साहित्य से राष्ट्र की एकात्म

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 36

धारणा को निकाल बाहर करने का श्रम करते ही रहते हैं। ये लोग नहीं मानते कि भारत एक राष्ट्र है, इसकी कोई एकात्म सांस्कृतिक चेतना है, ये दुनिया की फिक्र करते हैं, विश्व साहित्य और इतिहास का जिक्र करते हैं। इनसे अलगाववादियों को नैतिक बल मिलता है, असुरक्षा और हिंसा को प्रश्रय भी। इनके अलावे के कुछ लोग गंगा-जमनी तहजीब वाले हैं, कुछ सामासिक संस्कृति वाले और कुछ नए-नए लोग बहुसंस्कृति पर जोर दे रहे हैं।

कुछ विलक्षण लोग ऐसे भी हैं जो यह भी मानने को तैयार नहीं कि संस्कृति शब्द भारतीय है। जेएनयू के एक प्रोफेसर संस्कृति शब्द को कल्चर का अनुवाद मानते हैं, कहते हैं कि 'संस्कृति' भारतीय परंपरा का शब्द नहीं है। संस्कृति शब्द अँग्रेजी के क्लचर का अनुवाद है। यह उपनिवेशवाद के साथ भारत आया है। आधुनिक हिंदी के आरंभिक लेखक, विशेष रूप से भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के लेखक सभ्यता से ही परिचित थे और उसी का प्रयोग करते थे' (संस्कृति का समाजशास्त्र, मैनेजर पाण्डेय)। मेरी जानकारी में निज भाषा हिंदी पर रचित भारतेंदु के सुप्रसिद्ध (काव्य भाषण, 1877 ई.) में संस्कृति शब्द आया है- 'अँग्रेजी अरु फारसी अरबी संस्कृति ढेर।' व्याख्या और व्यवहार सहित बिल्कुल अपने मूलार्थ में संस्कृति शब्द संस्कृत के प्रांगण में बहुप्रचलित रहा है। पं. दीनदयाल उपाध्याय, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और श्रीराम शर्मा आचार्य के लेखन में प्रकृति, विकृति और संस्कृति का त्रिविध प्रयोग समान रूप में देखा जा सकता है। वेदों और ब्राह्मणों में अनेक बार संस्कृति शब्द के प्रयोग हुए हैं- 'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा' (यजु. 7.14)। विश्व मानव द्वारा वरण करने योग्य यह पहली सर्वोत्कृष्ट संस्कृति है- यह ऋषि वाणी भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का बखान करती है। विशेष जानकारी के लिए बताना जरूरी है कि संस्कृति केवल शब्द नहीं, छंद भी है। वेद के सप्त छंदों में जगती के अनंतर अतिजगती छंद आता है, इसके उपभेदों में कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति और संस्कृति आदि छंद आते हैं। छंद ध्वनि तरंग भी है, इसलिए रेखाकार है अर्थात शिल्प भी है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में आत्मसंस्कृति के शिल्प की चर्चा है- 'आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि'। इससे यह ज्ञात होता है कि संस्कृति का गहरा संबंध सृष्टि से ही नहीं, मानुषी सृजन से भी है, अल्पतम भौतिक साधन पर जीवन यापन करते हुए उच्चतम विचार में रहनेवाले तपस्वीजन अथवा जागतिक ऐश्वर्यों में भी निष्काम रहने वाले शिवसंकल्पी लोग आत्मसंस्कृति का सृजन करते हैं। 'शतपथ ब्राह्मण' के कथन से ज्ञात होता है कि संस्कृति के दिक्काल में आरोहण क्रम है- 'तत्संस्कृत्य समारोहन्' (8.4.1.3)। एकात्मता की अवस्था की प्राप्ति के लिए चित्त की उदारता आवश्यक है। उदार चित्त का व्यक्ति ही वसुधा को कुटुंबवत् देखता है। राष्ट्रीय एकात्मता के लिए उदारचेत्ता रचनाधर्मियों द्वारा एकात्म संस्कृति का निरंतर सृजन आवश्यक है, तभी राष्ट्रीय एकात्मता मुखर रह सकती है।

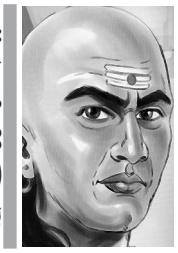

हमारी मातृभूमि राजनीतिक रूप से अनेक जनपदों में बँटी अवश्य है, पर सांस्कृतिक रूप से वह एक है। एक ही संस्कृति के प्रवाह में माँ भारती के पुत्र पल्लवित हो रहे हैं तो जनपदों की सीमाएँ उन्हें कैसे बाँट सकती है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी महाकवि कालिदास को भारतवर्ष की समग्र राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को मूर्तमान करनेवाला कवि कहते हैं और सर्व उपमा द्रव्यों से निर्मित माँ पार्वती के सौंदर्य विग्रह को राष्ट्रीय संस्कृति की प्रतिमा घोषित करते हैं-

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 37

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौंदर्य दिदृक्षयेव।।

कुमार संभव 1.49

'ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्मा संसार का संपूर्ण सौंदर्य एक ही स्थान पर देखना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने उपमा देने के लिए सभी वस्तुओं को यत्नपूर्वक एकत्र कर उनके सौंदर्य को यथास्थान विनिवेशित करके पार्वती का निर्माण किया था।' पार्वती भारत की सर्व वैभव से संपन्न प्रकृति हैं, ऐसी प्रकृति जिसमें भूमि तत्त्व से लेकर आकाश तत्त्व तक, तम से ज्योति तक ज्ञानमय आरोहण है और ज्योति से तम तक सृष्टिकारी अवरोहण भी। भारत की पंचधा प्रकृति का द्योतक पर्वतों का राजा देवतात्मा हिमालय है जो पृथ्वी का मानदंड बनकर पूर्व और पश्चिम के समुद्रों में प्रविष्ट हुआ है। ऐसे हिमालय से निसृत भारत-भूमि ही हिमालय की पुत्री पार्वती हैं। भारत की भू-संस्कृति का यह अनुपम उपास्य विग्रह लोकमानस में वैदिक काल से आज तक स्थापित है, इसे ऋषि कवियों ने माता कहा और स्वयं को पुत्र-'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' एवं माँ और संतान के अभिन्न संबंध को गाया। अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त में पृथ्वी की कृतज्ञता पूर्वक स्तुति करते हुए कहा गया कि चार दिशाओंवाली पृथ्वी ने अन्न और प्राण देकर मनुष्य सहित सभी प्राणियों को धारण किया है-

यस्याश्चतस्त्राः प्रदिशः पृथिव्या यस्यान्नं कृष्टयः संबभूवः।
या बिभर्ति बहुध प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधतु
।।4।।

सप्राण सजीव माता पृथ्वी महाकाल की संगिनी हैं, यही अपनी चौबीस घंटे की गति से काल को समस्त प्राणियों की दिनचर्या के लिए सुलभ बनाती हैं अर्थात पृथ्वी ही अपने परिभ्रमण द्वारा अनास्त सूर्य के समक्ष निरवधि काल को काल विभागों में विभाजित कर सावधि काल के लोक उत्पन्न करती हैं। दिक्कालमय लोक उनकी संतान है और महाकाल महादेव पति। विज्ञान सम्मत इस तथ्य को पृथिवीसूक्त के प्रथम मंत्र में पृथ्वी को भूत और भविष्यत् काल की पत्नी कहकर इंगित किया गया है- सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ।।1।।

इसी तथ्य को पुराण की कथा-भाषा शिव-पार्वती के वृत्तांत में कहती है और यही तथ्य कालिदास ने रामायण-महाभारत से अग्रसर हुई अपनी काव्य-भाषा में कहा है। उनकी रचनाओं के उपजीव्य ग्रंथ महाभारत के शकुंतलोपख्यान में शकुंतला कहती है- 'ओ दुष्यंत, तुम्हारे बिना भी मेरा यह पुत्र चारों ओर समुद्र से घिरी हुई और हिमालय का कुंडल धारण करनेवाली पृथ्वी का पालन करेगा'-

त्वा मृतेऽपि हि दुष्यन्त शैलराजावतंसकाम्।
चतुरन्ता तामिमामुर्वी पुत्रो मे पालयिष्यति ।।

महाभारत 1.74.108

निश्चय ही भारतीय साहित्य ने राष्ट्र की एकात्मता और एकात्म संस्कृति को मूर्तरूप दिया है, जो स्वाधीनता संघर्ष की आकांक्षा से लिखे गए राष्ट्रभाव के साहित्य में तीव्रता से मुखर हुआ है, आज भी भारत की संपूर्ण स्वतंत्रता अर्थात अनौपनिवेशन के लिए इस प्रकार के सृजन की आवश्यकता है। मार्क्सवाद के प्रभाव में भारत के एकात्म सांस्कृतिक वैभव की उपेक्षा उचित नहीं, बल्कि घातक है, इसके कारण राष्ट्र विरोधी अलगाववादी शक्तियों को उत्साह मिलता है। राष्ट्र की समृद्धि और सुरक्षा के लिए भारत की एकात्म संस्कृति का जागरण आवश्यक है, राष्ट्रीय एकात्मता को कहीं से आयातित नहीं करना है, यह स्वाभाविक रूप से भारत की सांस्कृतिक चेतना में समाहित है।

लेखक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली में प्राध्यापक हैं।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 38

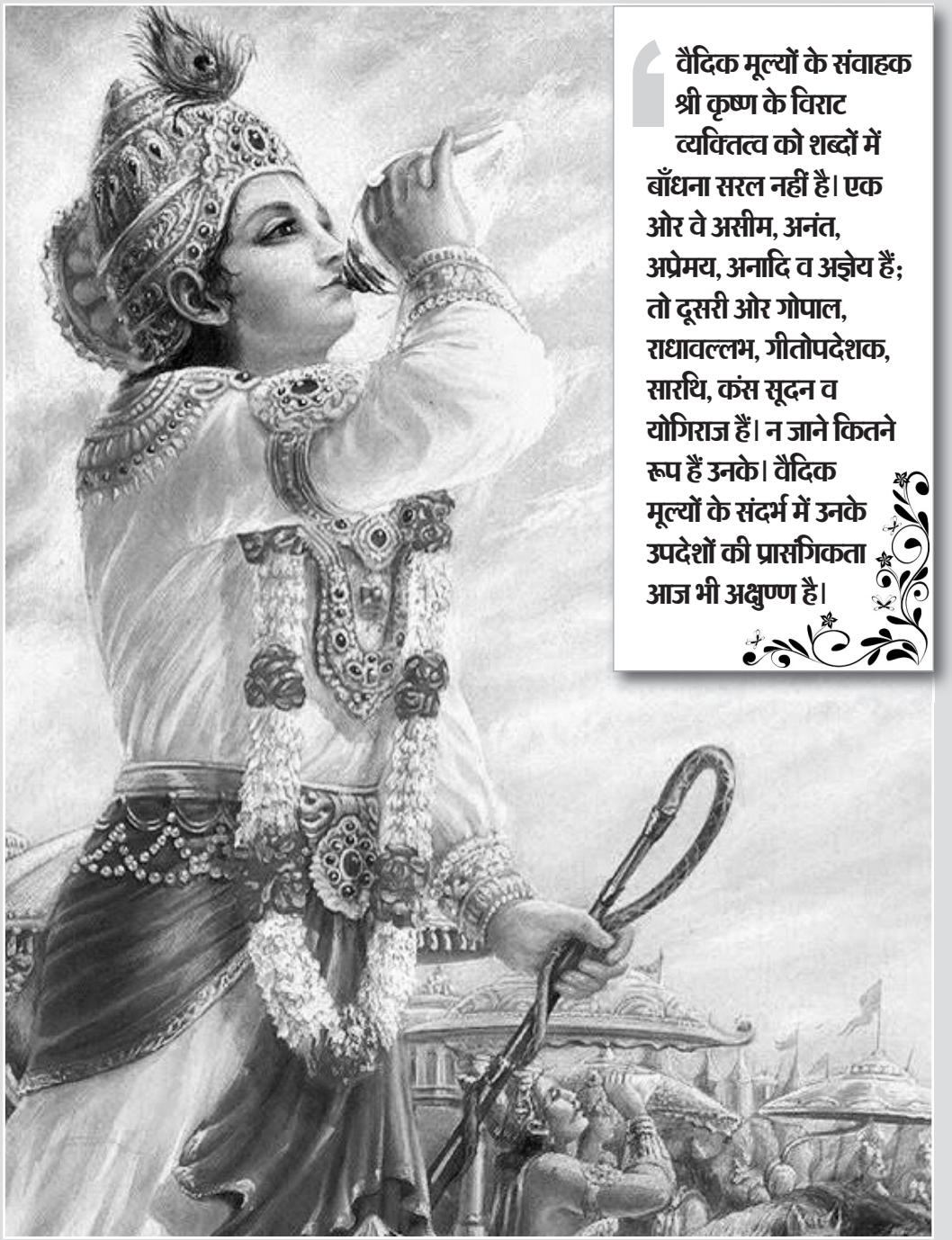

वैदिक मूल्यों के संवाहक श्री कृष्ण के विराट व्यक्तित्व को शब्दों में बाँधना सरल नहीं है। एक ओर वे असीम, अनंत, अप्रेमय, अनादि व अज्ञेय हैं; तो दूसरी ओर गोपाल, राधावल्लभ, गीतोपदेशक, सारथि, कंस सूदन व योगिराज हैं। न जाने कितने रूप हैं उनके। वैदिक मूल्यों के संदर्भ में उनके उपदेशों की प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण है।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 39

डॉ. (श्रीमती) जयश्री शुक्ल

वैदिक मूल्यों के संवाहक
श्री कृष्ण के संदेश की प्रासंगिकता

भगवान् श्री कृष्ण के स्वरूप एवं उनके आविर्भाव (जन्म), चरित्र (कर्म), गुण, प्रभाव और वचनों की महिमा अनंत और अपार है। अज, अविनाशी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, पूर्णब्रह्म परमात्मा ही स्वयं दिव्य अवतार धारण करके प्रकट होते हैं और उनके दर्शन, भाषण, चिंतन, वंदन आदि करके पापी भी परम पवित्र हो जाते हैं-वह उनके विलक्षण स्वरूप का अलौकिक रहस्य है। भगवान् श्रीकृष्ण का विग्रह उपासकों के ध्यान और धारणा का मंगलमय आधार और संपूर्ण लोकों के लिए परम रमणीय आश्रय है, इसलिए उन्होंने योगियों के समान अग्निदेवता संबंधी योगधारणा के द्वारा उसको जलाया नहीं, सशरीर अपने धाम में चले गए (क्योंकि वे योगियों के भी ईश्वर थे)। इससे यही सिद्ध हो गया कि भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए और अन्तर्धान हो गए उनकी उत्पत्ति और विनाश नहीं हुआ। भगवान् अपने भक्त को उसी रूप में भजते हैं जिस रूप में भक्त उन्हें भजता है। मनुष्यों में जहाँ जो भी गुण दिखलाई पड़ते हैं, वे परिमित, एकदेशीय, प्राकृत, लौकिक, अल्प और जड़ हैं, किंतु भगवान् के गुण अपरिमित, अनंत, अप्राकृत, महान्, दिव्य और चिन्मय हैं।

भारतीय संस्कृति की यह मान्यता है कि वेद से ही धर्म निकला है - 'वेदोद्धर्मोहि निर्बभौ।' एक प्रश्न उठता है कि वेद की नित्यता को प्रत्यक्ष प्रमाण या अनुमान प्रमाण से सिद्ध किया जा सकता है क्या ? परंतु इस संबंध में शंकराचार्य आदि महानुभावों ने प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाण का खंडन कर शब्द प्रमाण को ही स्थापित किया है। (शारीरिक भाष्य-2/3/1) मानव बुद्धि सीमित है। क्षुद्रतम मानव मस्तिष्क 'अज्ञेय' काल के तत्त्वों को कैसे प्रत्यक्ष कर सकता है और अनंत समय की बातों का अनुमान ही कैसे लगा पाएगा? इसीलिए भगवान् ने स्वयं गीता में कहा - 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।' कार्य एवं अकार्य की व्यवस्थिति अर्थात् कर्तव्य एवं अकर्तव्य का निर्णय करने में शास्त्र ही एक मात्र प्रमाण है। आर्यों के सभी शास्त्र वेद को नित्य, शाश्वत और अपौरुषेय मानते हैं, अर्थात् वेदों को किसी पुरुष के द्वारा निर्मित नहीं मानते। इसीलिए वेद के शब्दों को

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 40

हमारे धर्म, कर्म तथा जीवन के मार्गदर्शन का प्रमाण माना गया है।

वेदों में यत्र-तत्र कुछ शिक्षाप्रद आख्यान तथा आख्यानों के कतिपय संकेत सूत्र भी प्राप्त होते हैं। यद्यपि कुछ आख्यान ऐतिहासिक जैसे भी प्रतीत होते हैं, जिनके आधार पर कुछ आधुनिक विद्वान उन आख्यानों के सहारे अर्थात् वेद के अनुसार, वेद के काल का निर्णय करने का प्रयास करते हैं, परंतु वास्तव में ये आख्यान इतिहास के नहीं है। कुछ आख्यानों में सदा रहने वाली घटनाओं को कथा का रूप देकर समझाया गया है। जो एक प्रकार से जगत् का नित्य इतिहास है। वास्तव में वेद के ये आख्यान हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। हमारे अंदर नैतिक मूल्यों-सुसंस्कारों को जन्म देते हैं। ये कथाएँ उपदेश नहीं देती, प्रत्युत अपनी प्रस्तुति से हमारे अंदर एक विचार उत्पन्न करती हैं, अच्छे बुरे का विवेचन करती हैं और हमें उस सत्-असत् से परिचित करा कर हमारे मन-मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड़ती हैं। ये कथाएँ केवल देवों-दानवों, ऋषियों-मुनियों एवं राजाओं की ही नहीं है, अपितु समस्त जड़-चेतन, पशु-पक्षी आदि से भी संबंधित है, जो कर्तव्य कर्मों का बोध कराती हुई शाश्वत कल्याण का मार्गदर्शन करती हैं।

ईश्वरोपासना, योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, विद्याप्राप्ति, ब्रह्मचर्य पालन तथा सत्संग आदि मुक्ति के साधन बतलाए गए हैं। कर्मफल की प्राप्ति के लिए पुनर्जन्म का प्रतिपादन, आत्मोन्नति के लिए संस्कारों का निरूपण, समुचित जीवन-यापन के लिए वर्णाश्रम की व्यवस्था तथा जीवन की पवित्रता के निमित्त भक्ष्याभक्ष्य का निर्णय करना वेदों की मुख्य विशेषता है।

यह सर्वविदित है कि मानव के ऐहिक और आयुष्मिक कल्याण के साधन रूप-धर्म का सांगोपांग विश्लेषण वेदों में ही उपलब्ध है। धर्म के साथ-साथ अध्यात्म, मर्यादा, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, शिल्प उद्योग आदि ऐसा कौन-सा विषय है, जिसका प्रतिपादन वेदों में न किया गया हो? यही कारण है कि मनीषियों ने वेद को कालातीत अक्षय ज्ञान का निधान कहा है। मनुष्य जाति के प्राचीनतम इतिहास, सामाजिक नियम, राष्ट्र धर्म, सदाचार, कला, त्याग, सत्य आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एकमात्र साधन वेद ही हैं। वेदों में जो विषय प्रतिपादित हैं, वे मानव मात्र का मार्गदर्शन करते हैं। मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यंत प्रतिक्षण कब, क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए साथ ही प्रातःकाल जागरण से रात्रि-शयन पर्यंत संपूर्ण चर्चा और क्रिया-कलाप ही वेदों के प्रतिपाद्य विषय हैं। इस प्रकार वेद का अंतिम लक्ष्य

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 41

मोक्ष प्राप्ति ही है। ईश्वरोपासना, योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, विद्याप्राप्ति, ब्रह्मचर्य पालन तथा सत्संग आदि मुक्ति के साधन बतलाए गए हैं। कर्मफल की प्राप्ति के लिए पुनर्जन्म का प्रतिपादन, आत्मोन्नति के लिए संस्कारों का निरूपण, समुचित जीवन-यापन के लिए वर्णाश्रम की व्यवस्था तथा जीवन की पवित्रता के निमित्त भक्ष्याभक्ष्य का निर्णय करना वेदों की मुख्य विशेषता है। कर्मकांड, उपासना कांड और ज्ञानकांड इन तीन विषयों का वर्णन मुख्यतः वेदों में मिलता है। कर्मकांड में यज्ञ-यज्ञादि विभिन्न क्रिया-कलापों का प्रतिपादन विशेष रूप से हुआ है। यज्ञ के अंतर्गत देवपूजा, देवतुल्य महर्षियों का संगतीकरण (सत्संग) और दान- ये तीनों होते हैं।

नासदीय सूक्त में सृष्टि के मूलतत्त्व, गूढ़ रहस्य का वर्णन किया गया है। सृष्टि-रचना जैसा महान गंभीर विषय ऋषि के चिंतन में किस प्रकार प्रस्फुटित होता है- यह नासदीय सूक्त में देखने को मिलता है। इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में अत्यंत सूक्ष्मता के साथ विचार किया गया है, इसलिए यह सूक्त 'सृष्टि सूक्त' के नाम से भी जाना जाता है। संसार सृष्टि के परमगूढ़ रहस्य को यदि कोई जानते हैं तो केवल वे जो इस समस्त सृष्टि के अधिष्ठाता हैं। उनके अतिरिक्त इस गूढ़ तत्त्व को कोई नहीं जानता। नासदीय सूक्त की गणना विश्व के शिखर साहित्य में होती है। सूक्त में आध्यात्मिक धरातल पर विश्व-ब्रह्माण्ड की एकता की भावना स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई है। भारतीय संस्कृति में यह धारणा निश्चित है कि विश्व ब्रह्माण्ड में एक सत्ता विद्यमान है, जिसका नाम, रूप कुछ भी नहीं है। इस सूक्त में इसी सत्य की अभिव्यक्ति है। वेदों में आध्यात्मिक संदेश यह है कि व्यक्ति के चित्तवृत्ति रूप राज्य में प्रतिपल पवित्र, वरेण्य एवं उर्वर विचार-सरिता बहती रहे, जिससे अन्तः करण में सद्वृत्तियाँ जाग्रत होती रहें। देव दुर्लभ मनुष्य शरीर का प्रयोजन सकल दुःख-निवृत्ति एवं परमानंद की प्राप्ति है। वेदों के प्रति पूर्ण निष्ठा रख कर और उनके बताए गए मार्ग पर चल कर ही मानव इसे प्राप्त कर सकता है। मानव मात्र के लिए अंतिम उपदेश है- 'सत्य के मार्ग पर चलो।' यही है वेद का आध्यात्मिक संदेश।

सतयुग से लेकर कलियुग तक वेद की वाणी एवं वेद का आध्यात्मिक संदेश चिरकालिक है। मानव मात्र का कल्याण वेद के दिशा निर्देश पर चलने में है। आज से करीब पाँच हजार वर्ष पूर्व द्वापर युग में भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित हुए। वेदों का अवतरण श्रीकृष्ण के जन्म के समय से भी हजारों वर्ष पूर्व हुआ है। ऋग्वेद

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 42

में श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म के रूप में स्वीकृत हैं। यद्यपि अन्य वैष्णव पुराणों में विष्णु को ही सर्वोपरि स्थान दिया गया है तथापि 'भागवत पुराण' में हरि अथवा कृष्ण को ही भगवान् माना गया है। भक्ति संप्रदाय में यह भगवान शब्द ही परम तत्त्व का दर्शक है। पृथ्वी का भार हरण करने के लिए भगवान् ने वृष्णि वंश में बलराम कृष्ण के रूप में अवतार धारण किया। इसी अवतार में भगवान् ने ऐसी अद्‌भुत लीलाएँ कीं जिनको समझना सामान्य जन के लिए कठिन है। पुराण साहित्य में श्रीकृष्ण का चित्रण साक्षात् परब्रह्म, पूर्ण परमात्मा के रूप में हुआ है। वे स्वयं साक्षात् भगवान् हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा अनुग्रह मार्ग की स्थापना महाकरुणामय प्रभु ही करते हैं क्योंकि भगवान् के अनुग्रह ही साधन हैं। भगवान् की कृपाकाल, कर्म, स्वभाव आदि महान बाधाओं को भी मिटा देती है। पुष्टि मार्ग में भगवान् स्वयं भक्त के हृदय में प्रादुर्भूत होकर हृदय को स्वचरित लीलाकृत से सदा के लिए संयोजित कर देते हैं जिस व्यक्ति के हृदय में भगवान् इस तरह स्थिर हो जाते है वह स्वतंत्र भक्त कहलाता है। ऐसा वैष्णव सम्प्रदाय के विद्वानों का मत है।

भगवान कृष्ण ने जन्म लेने के बाद ही ब्रज की विपत्तियों का एक-एक करके सामना किया। पूतना वध, यमलार्जुन उद्धार, शंकटासुर वध, अघासुर वध, कालिया दमन, गोवर्धन पर्वत धारण करना, कंस-चाणूर वध इत्यादि उनकी लीलाएँ समाज में व्याप्त विघ्न-बाधाओं, कुरीतियों को मिटाने के लिए ही नर के रूप में की गई। द्वारिकाधीश बन कर पांडवों के लिए कई रूपों में कार्य किया। द्रौपदी के चीरहरण में साड़ी बढ़ा कर भरी सभा में उनकी लाज बचा कर रक्षा की, इससे बड़ा समाज में नारी सम्मान का कोई अन्य उदाहरण नहीं है। शांति दूत बन कर पांडवों की ओर से कौरवों के पास गए कि युद्ध न

मानवीय मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है। चारों ओर अराजकता, अशांति, असुरक्षा, आतंकवाद का साम्राज्य फैला हुआ है। सारी मानवता दिशाहीन होकर भटक रही है। अनुशासन, संयम, शीलता, विनम्रता, सद्‌व्यवहार, सत्य भाषण, नैतिकता आदि गुण नाम के लिए रह गए हैं।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 43

हिंसा दो हिंसक शक्तियों में संतुलन तो बिठाती है, किंतु हृदय को जीत कर स्थायी शांति की स्थापना नहीं कर पाती। विनाश की नींव पर बना शांति का प्रासाद टिकाऊ नहीं होता। अहिंसा और शांति दोनों सापेक्ष मूल्य हैं। सत्य के दो ध्रुव हैं। पुरातन ऋषियों ने इनकी अनुभूति की थी। उनके समक्ष जीवन के महत्तम मूल्य थे। दूरदर्शिनी प्रज्ञा थी, इसलिए उन्होंने शाश्वत शांति के साधना पक्षों का अन्वेषण किया था।

हो। सत्य का पक्ष लेने के लिए अर्जुन के रथ के सारथि बने।

कृष्ण ने महाभारत के युद्ध में 'गीता का उपदेश' अर्जुन को दिया जो समस्त विश्व की अमूल्य निधि है, जिसका दर्शन, जिसका ज्ञान, उस समय जितना सार्थक था, आज उसकी आवश्यकता उस समय से भी अधिक है, समाज के लिए और विश्व के समस्त प्राणियों के लिए, क्योंकि आज सारा विश्व युद्ध की विभीषिका से आक्रांत है। कब सृष्टि का विनाश हो जाए? सारा विश्व सशंकित है। बमों की विध्वंसकारी शक्ति आज सत्ता की पहचान बन गई है। सारा समाज विकृतियों का मकड़जाल प्रतीत होता है। मानवीय मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है। चारों ओर अराजकता, अशांति, असुरक्षा, आतंकवाद का साम्राज्य फैला हुआ है। सारी मानवता दिशाहीन होकर भटक रही है। अनुशासन, संयम, शीलता, विनम्रता, सद्व्यवहार, सत्य भाषण, नैतिकता आदि गुण नाम के लिए रह गए हैं। युवा पीढ़ी पश्चिम की अंधी दौड़ में भाग रही है। मर्यादाओं को तोड़ना, मनमानी करना, हेकड़ी दिखाना बड़ी शान और गौरव की बात मानी जा रही है। टी.वी. सभ्यता में अश्लीलता की कोई सीमा ही नहीं रह गई। बुजुर्ग पीढ़ी चिंतित है नई पीढ़ी के बिगड़ते रूप को देख कर, पर उन्हें ना सुना जा रहा है ना माना जा रहा है वो करें तो क्या करें? ऐसे समय में भगवान् कृष्ण के कार्य, व्यवहार, लोकनीति, राजनीति, दर्शन, चिंतन की महती आवश्यकता है। उनका अवतार भी उस समय के बढ़े हुए अत्याचार को मिटाने के लिए ही हुआ था। आज भी परिस्थितियाँ ऐसी ही हैं। हिंसा दो हिंसक शक्तियों में संतुलन तो बिठाती है, किंतु हृदय को जीत कर स्थायी शांति की स्थापना नहीं कर पाती। विनाश की नींव पर बना शांति का प्रासाद टिकाऊ नहीं होता। अहिंसा और शांति दोनों सापेक्ष मूल्य हैं। सत्य के दो ध्रुव हैं। पुरातन ऋषियों ने इनकी अनुभूति की थी। उनके समक्ष जीवन के महत्तम मूल्य थे। दूरदर्शिनी प्रज्ञा थी, इसलिए उन्होंने शाश्वत शांति के साधना पक्षों का अन्वेषण किया था।

क्या है शांति

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर- ये चित्त के छह विकार हैं, जिनसे चित्त अशांत रहता है। इनका जन्म आसक्ति से होता है। मैं, मेरा, मेरे लिए- की भावनाएँ ही आसक्ति के रूप हैं। इस पर नियंत्रण पा लेने से शांति प्राप्ति सरलता से हो सकती हैं। परमात्मा शांतिपद, शांताकार और शांतिस्वरूप है। जीवात्मा उसी का अंश अथवा सर्वांश रूप है। अतः दोनों की एकरूपता होने से जीव भी मूलतः शांति स्वभावी है। गीता के सोलहवें

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 44

अध्याय में भगवान् कृष्ण ने दैवी संपदाओं का एवं आसुरी संपदाओं का उपदेश दिया है। गीतोक्त दैवी संपत्तियों में शांति का चौदहवां स्थान है। शांति प्राप्ति जीवन का चिर लक्ष्य तथा यही प्रकारांतर में पुरुषार्थ है। हर मनुष्य शांति चाहता हैं। शांति है क्या ? गीता की टीकाओं में इसके अनेक पर्याय उल्लिखित हैं, जैसे- मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण,

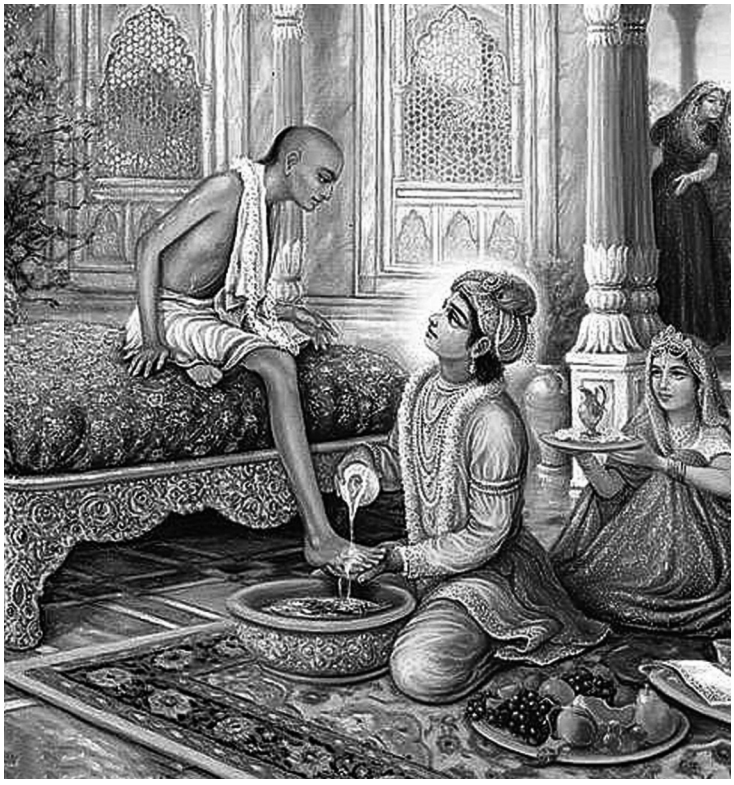

और संसारोपरति, उपशम आदि। आचार्य शंकर ने इसे 'सर्व संसार दुःखो परम लक्षणा निर्वाणाख्या' कहा है। यह संसार-चक्र से शाश्वत विराम और 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं' के निरतर प्रवर्त्तमान चक्र से विमुक्ति है। यह आत्मा में चित्त की उपरति है- 'आत्मनि चिन्तोपरतिः शान्तिः।' विषयों में आसक्त होने पर चित्त चंचल और अशांत होता है। उसकी वृत्ति जब आत्ममुखी होती है, जब वह विषयों से विरत् होकर आत्मधाम में विश्राम करता है, आत्मतृप्ति तथा आत्म-आप्यायिति की इसी अवस्था का नाम शांति है।

आज के अशांत वातावरण में शांति की अत्यंत आवश्यकता है। आंतरिक और बाह्य सभी परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए शांति ही एकमात्र शर्त है। महाभारत में शांतिपर्व की तरह आज भी शांति की आवश्यकता है। भगवान् श्रीकृष्ण भी नहीं चाहते थे कि कौरवों और पांडवों में युद्ध हो। इसीलिए वे कौरवों के पास शांति के प्रस्ताव लेकर गए थे कि पांडवों को उनके हिस्से का राज्य दे दिया जाए और आपसी सहमति एवं शांति के साथ दोनों पक्ष मिल जुलकर रहें। द्वापर युग में भी भगवान् कृष्ण को शांति की चिंता थी। आज हम और सारा विश्व उसी शांति की खोज में है। मनुष्य शांति क्यों चाहता है? क्योंकि वह दुःखी और त्रिताप से त्रस्त है। दैहिक, दैविक तथा भौतिक तापों से परितप्त है। यह शरीर, मन त्रितापों से सर्वदा तवे के समान तप रहा है। यह तभी शीतल हो सकता है, जब परमात्मा की कृपा से इसे शांति मिलेगी। संत तुलसी कहते हैं कि सातों द्वीपों, नवों खंडों और तीनों लोकों में शांति के समान कोई अन्य सुख नहीं है। भगवान कृष्ण का भी शांति के लिए चिंतित होना स्वाभाविक था क्योंकि शांति चाहे भौतिक, मानसिक, दैविक, वैयक्तिक हो अथवा सामाजिक, उसकी प्राप्ति दैवी संपदा के गुणों निष्कामता, अपरिग्रह, अनासक्त कर्म, अहिंसा ज्ञान तथा भक्ति के द्वारा ही हो सकती है। शांति एक जीवन मूल्य है। वह सामाजिक तथा वैयक्तिक धरातलों पर सदैव आकांक्षित है। युद्ध का

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 45

आज के विश्व की स्थिति के संदर्भ में हमें बार-बार भगवान् कृष्ण के चरित्र का स्मरण हो आता है। भगवान् कृष्ण पूर्णावतार थे, सोलह कलाओं में दक्ष, राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, समाज सुधारक, नारी जाति की मर्यादा के रक्षक, दुष्टों के संहारक, संतों के संरक्षक, निर्भीक, चतुर, समायोजित व्यवहार करने की नीति में निपुण। ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान भगवान् कृष्ण के पास न हो।

उन्माद चाहे कितना ही प्रबल हो, पर वह जीवन का आदर्श कदापि नहीं है। यही कारण है कि बड़े-से-बड़े युद्ध की परिणति शांतिमय समझौते में होती है।

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।'

-श्रीमद्भगवद्गीता 4/7-8

वर्तमान समय में भी अधर्म की स्थापना हो रही है। धर्म का लोप हो रहा है। संस्कारों और मर्यादाओं का ह्रास हो रहा है। बंधन चाहे वह अनुशासन का हो, संयम का हो, शील का हो, किसी भी चारित्रिक गुण की श्रेष्ठता का बंधन हो, आज की पीढ़ी को स्वीकार नहीं हैं। स्वच्छंद जीवन, द्विअर्थी स्वभाव, स्वाभाविक प्रकृति से विपरीत आचरण का सब ओर बोलबाला है। संत, महात्मा, गौ और ब्राह्मण असुरक्षित हैं, असामाजिक तत्त्वों को प्रश्रय दिया जा रहा है और समाज में उन्हीं का वर्चस्व है।

आज उपर्युक्त चिंतनीय सामाजिक परिस्थितियों में फिर एक अवतार की आवश्यकता है। पूर्ण ब्रह्म अपने अंशावतारों से ऐसी ही विकट परिस्थितियों को नियंत्रण में करने के लिए पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, कभी राम बन कर और कभी श्याम बन कर। आज के विश्व की स्थिति के संदर्भ में हमें बार-बार भगवान् कृष्ण के चरित्र का स्मरण हो आता है। भगवान् कृष्ण पूर्णावतार

थे, सोलह कलाओं में दक्ष, राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, समाज सुधारक, नारी जाति की मर्यादा के रक्षक, दुष्टों के संहारक, संत महात्माओं के संरक्षक, निर्भीक, चतुर, समायोजित व्यवहार करने की नीति में निपुण। ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान भगवान् कृष्ण के पास न हो। द्वारिकाधीश भी हैं कृष्ण और योगिराज भी हैं, जगद्गुरु भी हैं और सुदामा जैसे दीन के सुदृढ़ मित्र भी हैं। रुक्मिणी के द्वारिकानाथ हैं, तो राधा के श्याम हैं, गोपियों के कृष्ण हैं, माता-यशोदा और बाबा नंद के कान्हा हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी कृष्ण के कार्य जितने सार्थक द्वापर युग में थे, आज के वर्तमान संदर्भ में भी उनकी प्रासंगिकता उतनी ही है। उनके कार्य, उनकी नीति, उनके संदेश आज हम भटके हुए जन-समाज को सही राह दिखाने में सर्वसक्षम हैं।

लेखिका बिलासपुर में हिंदी की वरिष्ठ प्राध्यापिका हैं।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 46

तीन ओर समुद्र और उत्तर में हिमालय से घिरे इस देश में अनगिनत नदियां, झील, तालाब और मानव निर्मित बड़े-बड़े बाँध हैं, लेकिन इन सबके बावजूद देश जल-संकट से जूझ रहा है, यहाँ विचारणीय बिंदु यह है कि क्या ये स्थितियां अचानक पैदा हुई हैं या फिर इन्हें हमने धीरे-धीरे पैदा किया है। भौतिक समृद्धि पाने की अंधी दौड़ में, हमने सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा कर, जिस तरह की जीवन पद्धति को अपनाया है, वह ही इस स्थिति के लिए जिम्मेवार है। इस स्थिति से उबरने के लिए हमें विकास के ऐसे मॉडल पर विचार करना होगा जिसमें प्रकृति के साथ सहयोग और सामंजस्य बैठा कर चला जा सके। भारत में जल संरक्षण की प्राचीन परंपरा है। आज उस परंपरा को आधार बनाकर देश में कई स्थानों पर ऐसे सफल प्रयोग हो रहे हैं जो जलसंकट का स्थाई समाधान प्रस्तुत करते हैं। आवश्यकता है ऐसे प्रयोगों को व्यापक स्तर पर अपनाने की।

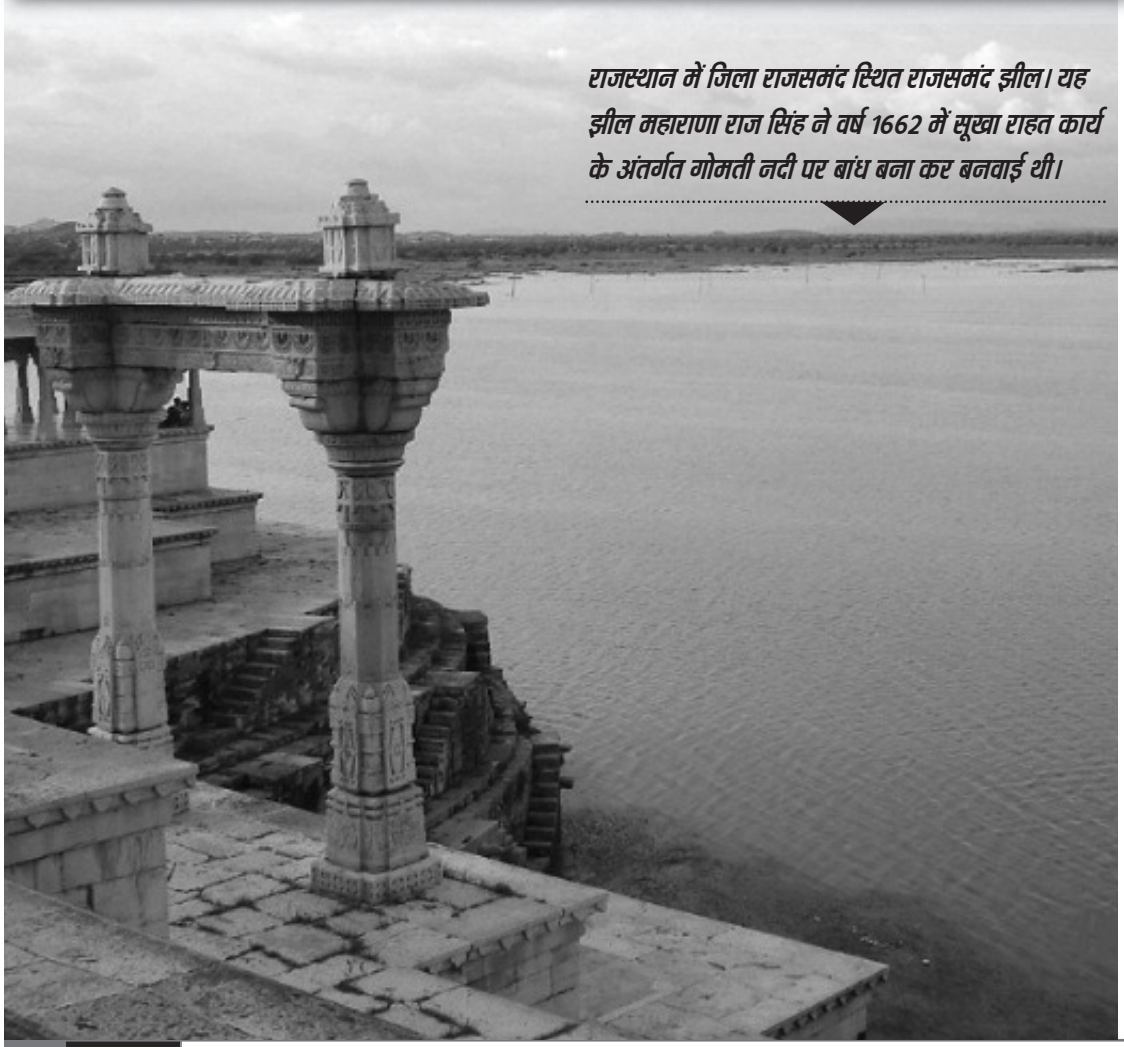

राजस्थान में जिला राजसमंद स्थित राजसमंद झील। यह झील महाराणा राज सिंह ने वर्ष 1662 में सूखा राहत कार्य के अंतर्गत गोमती नदी पर बांध बना कर बनवाई थी।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 47

नरेश सिरोही

सूखा संकट पानी का या सोच का

आज सूखे की मार से दस राज्यों के 256 जिले और देश की एक तिहाई आबादी ग्रस्त है। कामधेनु की तरह सबका पोषण करने वाली धरती का सीना मोटी-मोटी दरारों से चिरा पड़ा है। सूखे पेड़-पौधे, प्यासे जानवर और पक्षियों का रुदन राग भविष्य के महाविनाश का संकेत दे रहे हैं। किसान अपनी आँखों के सामने कुम्हलाती खेती, मवेशियों की चारा-पानी के लिए तड़पन, अपनी घर-गृहस्थी को उजड़ता देख, निराशा-हताशा में डूब, उस रास्ते की ओर बढ़ चला है, जहाँ से कोई लौटकर नहीं आता। इन परिस्थितियों का सही-सही विश्लेषण कर, विचार करने की आवश्यकता है, ताकि समझदारी के साथ समाधान खोजने में सही दिशा की ओर बढ़ चलें।

विश्व के अन्य देशों की तरह अपने देश में भी प्राकृतिक आपदाएं आना कोई नई बात नहीं है। किसी ना किसी क्षेत्र में सूखा-बाढ़, चक्रवात, तूफान, अकाल, महामारी और भूकंप आदि घटनाएं होती रही हैं और होती रहेंगी। हर भू-भाग में रहने वाली आबादी ने उन्ही परिस्थितियों में रहने का कौशल विकसित कर लिया था और आज भी कई देश ऐसा कर पाने में सफल हैं। जैसे हर मिनट किसी ना किसी भूकंप की कंपन सहने वाले जापान के क्रांतिकारी भवन डिजाइन, इजराइल में पानी की कमी है, लेकिन सिंचाई के सभी उन्नत टेक्नॉलॉजी के साथ-साथ डेयरी में भी इजराइल काफी ऊपर है। इसके अलावा दुनिया के ठंडे रेगिस्तान में गिने जाने वाले लाहौल-स्पिति में भी वहां के पारंपरिक ज्ञान के कारण ही पानी की उपलब्धता है और फल व सब्जी उत्पादन भी हो रहा है, ऐसे सैंकड़ों उदाहरण हैं।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 48

तीन ओर समुद्र और उत्तर में हिमालय से घिरे इस देश में अनगिनत नदियां, झील, तालाब और मानव निर्मित बड़े-बड़े बाँध हैं, लेकिन इन सबके बावजूद देश जल-संकट से जूझ रहा है, यहाँ विचारणीय बिंदु यह है कि क्या ये स्थितियां अचानक पैदा हुई हैं या फिर इन्हें हमने धीरे-धीरे पैदा किया है। भौतिक समृद्धि पाने की अंधी दौड़ में, हमने सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा कर, जिस तरह की जीवन पद्धति को अपनाया है। वह ही इस स्थिति के लिए

गौशाला, वनदेवता फार्म, खाडवे गाँव, रायगढ़

जिम्मेवार है। विकास और प्रकृति के बीच सहज सामंजस्य को भुलाकर, विकास के जिस मार्ग को हमने चुना है, क्या वो मार्ग मानव सभ्यता को सुख और समृद्धि की ओर ले जाने में सक्षम है? या महाविनाश की ओर! आज के 'विकास मॉडल' में प्रकृति के पंचमहाभूत पृथ्वी, जल, पवन, आकाश और अग्नि को बिना कुपित किए विकास की कल्पना की जा सकती है? या फिर नए सिरे से विकास की अवधारणा पर विचार करना चाहिए।

जिस तरह गरमाती धरती पर जलवायु परिवर्तन हो रहा है, उसे वैज्ञानिक भी सामान्य नहीं मान रहे हैं। हिमालयी क्षेत्र में दो दशक से अधिक समय काम कर चुके वैज्ञानिकों ने आशंका जताई है कि हिमालय में सूखा चक्र की शुरूआत हो चुकी है। भूगर्भ वैज्ञानिकों का कहना है कि 50 वर्ष में हिमालयी क्षेत्र का तापमान और बढ़ेगा, जिससे शुरूआत में बाढ़ आएगी और फिर सूखा बढ़ेगा, अनियमित तेज बारिश होगी। इन बदलावों के चलते ना तो हिमालय में पानी रुकेगा और ना ही ग्लेशियरों के पिघलने से फिर बर्फ जम सकेगी। हिमालय के बाहरी वातावरण और नीचे भूगर्भ में हो रहे बदलाव अच्छे संकेत नहीं दे रहे हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि इंडियन प्लेट प्रतिवर्ष दो सेंटीमीटर हिमालय के नीचे सरक रही है, जिससे हर वर्ष हिमालय भी ऊंचा उठता जा रहा है। हिमालय अपने संक्रमणकाल से गुजर रहा है। कम से कम पचास हजार साल से अधिक चलने वाले इस चक्र को हिमालय एक बार पहले भी झेल चुका है। इन वैज्ञानिकों की बातें सुन इस देश के नीति-निर्माता जानें-समझें कि उन्हें क्या करना है। इन नीति-निर्माताओं से, जो हम समझे उसकी चर्चा भी कर लेते हैं। हरित क्रांति ने गेहूँ धान के भंडार तो जरूर भरे, लेकिन तिलहन-दलहन और मोटे अनाजों की स्थिति क्या है? पारंपरिक फसल चक्र के बदले फसल कुचक्र ने मिट्टी-पानी-बीज और पर्यावरण आदि को किस स्थिति में पहुंचाया है हम सब जानते हैं। इन नीति निर्माताओं ने देश की कृषि को गर्त में और

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 49

किसान को मौत के मुंह में धकेल दिया है। अभी सूखे की परिस्थिति पर ही चर्चा करें तो ठीक रहेगा। आँकड़े बताते हैं कि वर्ष 1951 में भारत में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 5177 घनमीटर थी जो आज घटकर 1650 घनमीटर रह गई है। वर्ष 2050 तक ये आँकड़ा 1447 घनमीटर या उससे भी कम होने की आशंका है। प्रति व्यक्ति कम जल उपलब्धता का बड़ा कारण बढ़ती आबादी है। देश में प्रति वर्ष बारिश और हिमनदों से 4000 अरब घनमीटर प्राप्त जल में से 2131 अरब घनमीटर यों ही बह जाता है, शेष 1869 में से मात्र 1123 अरब घनमीटर जल को हम सतही उपयोग या धरती के पेट में उतार पाते हैं। बड़े-बड़े बाँध और नदी जोड़ने जैसी महत्त्वाकांक्षी महंगी परियोजनाओं की सोच रखने वाले नीति निर्माताओं की देन है सूखा। इन अदूरदर्शी नीति निर्माताओं के पास ना तो टिकाऊ कृषि नीति है ना ही प्राकृतिक आपदाओं से निपटने की समझ और ना ही जल-प्रबंधन का सहूर। अगर ठीक से प्रबंधन कर लें तो अकेले 86,140 वर्ग किलोमीटर में फैला गंगा बेसिन ही 47 फीसद खेतों और 35 फीसद आबादी की सूखे से मुक्ति में सक्षम है। प्रबंधन की ही बात करें तो दिल्ली में प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता करीब 250 लीटर प्रति दिन है, जबकि मैक्सिको में प्रति व्यक्ति प्रति दिन पानी की उपलब्धता लगभग 150 लीटर है और इजराइल में प्रति व्यक्ति प्रति दिन पानी की उपलब्धता करीब 100 लीटर है, फिर भी वहां पानी की मारामारी नहीं है जबकि दिल्ली में पानी के लिए त्राहि-त्राहि है। इजराइल में यह सिर्फ पानी के सही प्रबंधन से ही संभव हुआ है।

मानकों के अनुसार अगर पानी की उपलब्धता प्रति वर्ष 1000 घनमीटर प्रति व्यक्ति हो तो ठीक माना जाता है। इजराइल में यह आँकड़ा करीब 461 घनमीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष का है। यानी तय मानकों से बेहद कम पानी की उपलब्धता होने के बावजूद इजराइल में पानी की कमी नहीं है और भारत 1650 घनमीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष पानी की उपलब्धता के बावजूद पानी की समस्या से जूझ रहा है।

दिल्ली में प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता करीब 250 लीटर प्रति दिन है, जबकि मैक्सिको में प्रति व्यक्ति प्रति दिन पानी की उपलब्धता लगभग 150 लीटर है और इजराइल में प्रति व्यक्ति प्रति दिन पानी की उपलब्धता करीब 100 लीटर है, फिर भी वहां पानी की मारामारी नहीं है जबकि दिल्ली में पानी के लिए त्राहि-त्राहि है। इजराइल में यह सिर्फ पानी के सही प्रबंधन से ही संभव हुआ है।

विश्व के करीब ढ़ाई फीसद भू-भाग पर लगभग अट्ठारह फीसद आबादी को लेकर रहने वाले भारत के पास समस्त प्रकार की जलवायु क्षेत्र मौजूद हैं। यहाँ बर्फ से ढंकी चोटियाँ... ध्रुव प्रदेश जैसा दृश्य ! दक्षिणी प्रायःद्वीप का भूमध्य रेखा के निकट सूर्य भी सीधी किरणों के कारण भीषण गर्मी वाला क्षेत्र भी भारत में है और चेरापूंजी जैसा क्षेत्र 16000 मिलीमीटर बारिश के साथ अधिकतम वार्षिक वर्षापात वाला क्षेत्र है, तो शून्य से 50 मिलीलीटर वर्षा का थार मरूस्थल वाला राजस्थान या लेह, लद्दाख, करगिल और लाहौल स्पिति के शुष्क क्षेत्र भी यहीं हैं। जहाँ आसमान से बरसी एक-एक बूंद को संजोने की वे पारंपरिक तकनीकें, जिनके चलते ये कम वर्षा वाले क्षेत्र भी बेपानी नहीं हुए। अगर, यहाँ पानी को संजोने

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 50

का स्थानीय कौशल ना होता, तो यहाँ आबादी भी ना होती।

देश की प्रभावित आबादी का बड़ा हिस्सा अपने घर और पशुओं को भगवान भरोसे छोड़ पलायन कर गया है। सच तो यह है कि, सरकारें भाग-दौड़ कर के भी पीने का पानी, पशुओं के लिए चारा, जरूरतमंदों को अनाज की व्यवस्था और फसल बरबाद होने पर रोजगार मुहैया नहीं करा पाईं हैं। लेकिन ये वक्त सूखे से उभरी चुनौतियों से निपटने का है, कोसने का नहीं। हम सबको मिल बैठकर तात्कालिक व दीर्घकालीन योजना पर विचार कर उनको क्रियान्वित करने का मार्ग प्रशस्त करना होगा। इसके लिए सरकार की सहभागिता के साथ-साथ जनभागिता भी जरूरी है। स्कूलों के पाठ्यक्रमों में बच्चों को बचपन से ही जल संरक्षण, संवर्धन और विवेकपूर्ण उपयोग के पाठ पढ़ाने होंगे, तभी इन आपदाओं से निपटने में हम फिर से सक्षम हो सकेंगे। और इसके लिए संचार माध्यमों को भी कारगर, रचनात्मक भूमिका निभानी होगी।

वनदेवता फार्म - ट्रे में चारे की खेती

हरित क्रांति के शुरूआती दौर से चले आ रहे फसल चक्र ने देश के 264 जिलों को डार्क जोन में पहुंचा दिया है। अभी तक औसतन 11 मीटर जल स्तर नीचे गिर चुका है। हमारे यहाँ भूजल का 70 से 80 फीसदी उपयोग अकेले सिंचाई के लिए होता है। हमें योजनाएं बनाते वक्त भौगोलिक और प्राकृतिक स्थितियों को ध्यान में रखना होगा। हमें मिट्टी, मौसम और उपलब्ध जल के अनुसार फसल और फसल चक्र का चयन करना चाहिए। कम पानी वाले क्षेत्रों में गन्ना और धान जैसी फसलों के बजाए कम पानी में होने वाले मोटे अनाज, दलहन, तिलहन आदि की पैदावार ले सकते हैं। जलवायु परिस्थिति के अनुसार बीजों का चयन भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। दुनिया में तीन 'आर' यानी 'रीड्यूज़, रिसाइकल और रीयूज़' की बात कही जा रही है। सही भी है हमें पानी और अन्य संसाधनों के उपभोग में कमी करनी है, फिर उनका पुनःचक्रण करना है, यानी अपशिष्ट जल को उपचारित करके सिंचाई, सफाई या अन्य कार्यों में दोबारा उपयोग करना आदि। इससे शहरी क्षेत्र में 60 फीसद के अधिक जल की खपत कम की जा सकती है।

भारत का पारंपरिक ज्ञान एक नहीं पांच साल सूखा और अकाल में भी सुख से रहने का गुर जानता था। लेकिन आधुनिकता की चकाचौंध ने जल को सहेज कर रखने,

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 51

बीजों को बचाने और पशुओं की नस्ल सुधार के हुनर को भुला दिया है। सूखे से निपटने में पशुधन की बड़ी भूमिका है। अगर इनके लिए पर्याप्त पानी और चारे का इंतजाम हो तो पशु भी बचेगा और उनके दूध से हमारी सेहत भी बनी रहेगी। बरसात के दिनों में जंगलों और खेतों में घास की और पतझड़ में पत्ते की भरमार होती है। पहले इन्हें सहेज कर रखने का चलन था, जो सूखे के दिनों में चारे के रूप में काम आता था। बागवानी भी सूखे के प्रभाव से निपटने में बड़ी भूमिका निभाती है। हुनरमंद हाथों की अहमियत को समझना होगा, सूखे के समय पूरे परिवार को रोजगार तो मिलता ही है, लेकिन उस समय भी सृजनशीलता की उड़ान

भारत का पारंपरिक ज्ञान एक नहीं पांच साल सूखा और अकाल में भी सुख से रहने का गुर जानता था। लेकिन आधुनिकता की चकाचौंध ने जल को सहेज कर रखने, बीजों को बचाने और पशुओं की नस्ल सुधार के हुनर को भुला दिया है।

दुखभरे वक्त को कैसे बिता देती है, इसकी गहराई को समझना होगा। फिर से पारंपरिक ज्ञान की अहमियत को समझना होगा...गांवों में कुटीर धंधों, हाथों के हुनरमंदों से जीवन जीने के हुनर को सीखना होगा।

हाल ही के दिनों में महाराष्ट्र के रायगढ़ जिले में कर्जत के निकट खाडवे गांव जाना हुआ। यहां अशोक गायकर और उनके मित्रों ने मिलकर दोनों ओर पहाड़ों से घिरे साठ एकड़ भूमि पर वनदेवता डेयरी एवं कृषि फार्म विकसित किया है। यहाँ वर्षा जल संरक्षण के लिए चैकडैम तथा पहाड़ों से बहकर आए जल को एक एकड़ तालाब में एकत्र किया जाता है। यहाँ पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक तकनीक के उपयोग का अद्भुत संगम देखने को मिला। दस भारतीय नस्लों की 150 गायों का संरक्षण और संवर्धन, दूध के अलावा गोबर-गोमूत्र से बने उत्पाद, गोबर गैस का उपयोग तथा कंपोस्ट खाद आदि द्वारा जैविक कृषि, बकरी पालन, मुर्गीपालन और मत्स्य पालन भी यहाँ हो रहा है।

बेमौसमी फल, फूल, सब्जी आदि पैदा करने के लिए पॉलीहाऊस तथा सूखे के मौसम में भी हाइड्रोपोनिक्स विधि द्वारा पशुओं के लिए हरे और पौष्टिक चारे का उत्पादन। आम, आँवला, चीकू सहित अन्य बागवानी फसलें हो रही हैं। खेतों में सिंचाई के लिए बूंद-बूंद या टपक (ड्रिप सिंचाई पद्धति) तकनीक का प्रयोग हो रहा है। यहां प्रधानमंत्री के 'मोर क्रॉप पर ड्रॉप' के आह्वान को साकार होते देखा जा सकता है। अगर दो साल वर्षा ना भी हो, तो भी यहां 60 एकड़ खेती और 150 गायों के लिए पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध है। देश के अलग-अलग भागों में उत्तराखंड में उफरेखाल में सच्चिदानंद भारती, बुंदेलखंड में मंगल सिंह, जयपुर के लापोड़िया के लक्ष्मण सिंह, मध्यप्रदेश के आईएएस उमाकांत उमराव जैसे आर्थिक और सामाजिक महाशक्ति के अनेक उदाहरण हैं, जो हमें सूखे में सुख से रहने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

आर्थिक महाशक्ति की चाह तभी पूरी होगी, जब आर्थिक स्थिति को गिरने से रोकने के उपायों के साथ-साथ गिरते भूजल के स्तर के उपाय भी हों। जब भू-जल का स्तर गिरता है तो जीवन की गुणवत्ता का स्तर भी गिर जाता है और बिन पानी खाद्य सुरक्षा की बात भी बेमानी है। हमें जरूरत है...भारतीय पारंपरिक ज्ञान के अनुभवों के आधार पर शोध और अनुसंधान की छूटी कड़ी को फिर से जोड़, आगे बढ़ने की।

लेखक 'दूरदर्शन किसान' के सलाहकार हैं।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 52

भारत में जाति प्रथा एक बहुत ही विवादित मुद्दा है। देश में जातीय मतभेदों का लाभ विदेशी आक्रमणकारी जी-भरकर उठाते रहे। भारतीय समाज की इस दुखती रग को पहचान कर विदेशी शासकों ने जाति-प्रथा को निरंतर बढ़ावा ही दिया, जिससे कि देश और भी निर्बल होता रहे और वे निश्चित होकर हम पर शासन करते रहे। आज भी दुर्भाग्य यह है कि देश की राजनीति इस सामाजिक विसंगति को संकीर्ण पार्टीगत लाभ के लिए बढ़ावा दे रही है।

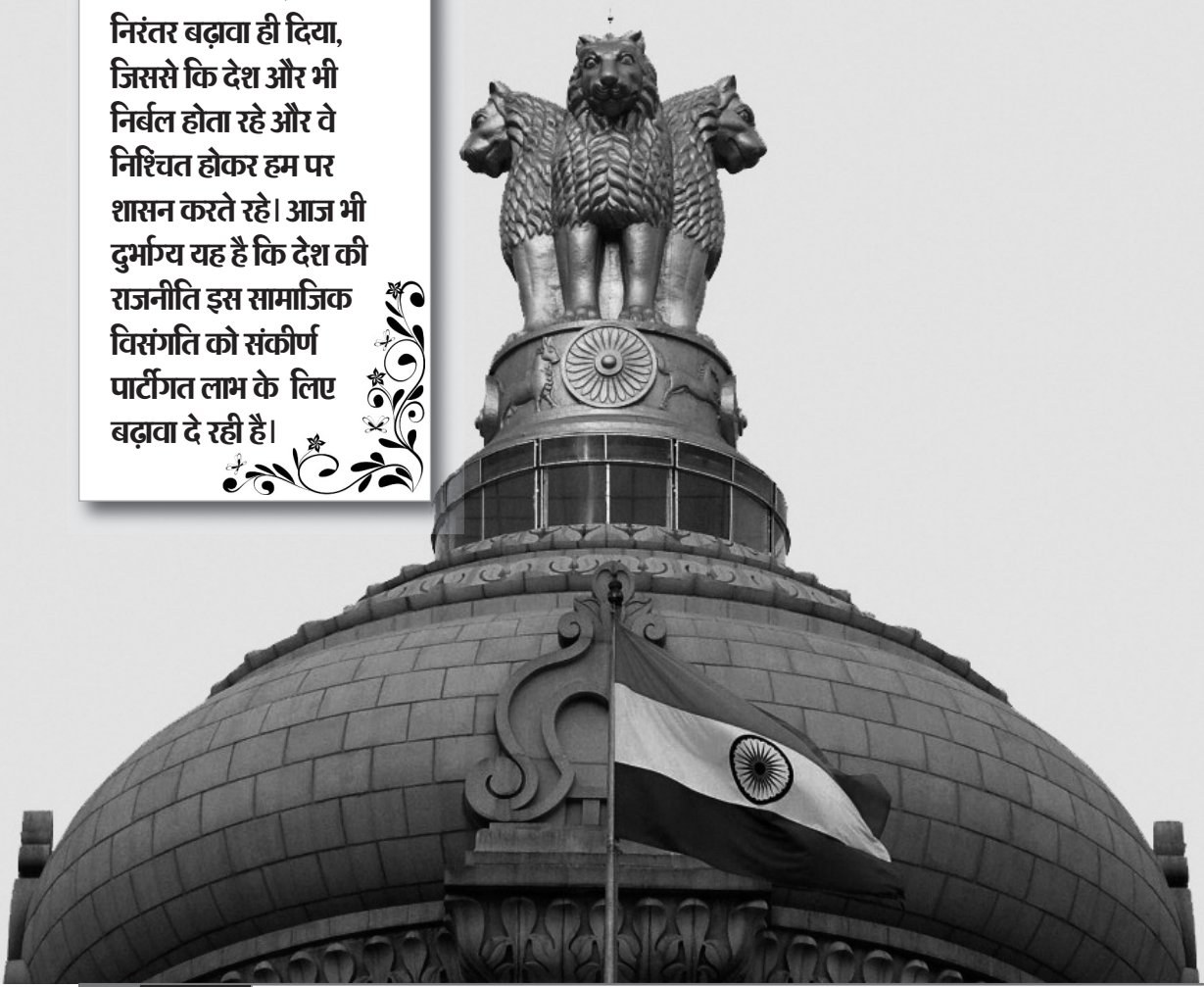

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 53

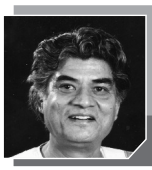

डॉ. सीतेश आलोक

कहाँ की जाति... कैसी जाति?

जाति-आधारित आरक्षण के नाम पर, लगभग दो दशक पहले, तत्कालीन प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह की नीतियों के फलस्वरूप, उग्र प्रदर्शनों से लेकर आत्मदाह तक की भयावह स्थितियाँ उत्पन्न हुई थी। आज फिर जनगणना में जाति के उल्लेख को स्थान देकर सरकार उस दानव को मान-सम्मान सहित प्रतिष्ठित कर रही है, जिसे बिना विलंब एवं सोच-विचार के, वर्षों पहले ही गहरे गड्ढे में दफना दिया जाना चाहिए था।

व्यापक धारणा यह है कि जाति-प्रथा के मूल में मनुस्मृति द्वारा निर्धारित सामाजिक नियम हैं - जबकि कहीं ऐसा प्रमाण नहीं है कि कभी उस ग्रंथ को व्यापक स्वीकृति मिली थी। हाँ यह अवश्य सच है कि 'मनुस्मृति' नामक एक प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध है, जो संभवतः महाभारत तथा अथर्ववेद की रचना से पहले रचा गया था और उसमें समाज को, व्यवसाय-आधारित, चार वर्णों में वर्गीकृत किया गया था। उसमें वर्ण-संबंधी नियम भी बताए गए हैं और उसके अनुरूप समाज में उन वर्णों के स्तर एवं पारस्परिक संबंधों का भी उल्लेख है।

इस संबंध में दो बिंदु अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं विचारणीय हैं- पहला तो यह कि क्या 'मनुस्मृति' को भारतीय समाज की प्रतिनिधि आचार-संहिता माना जाए? और दूसरा यह कि उसमें वर्णित व्यवसाय-आधारित वर्ण-व्यवस्था, जन्म पर आधारित कैसे बनी? विडंबना यह भी कि समाज ने विष्णुपुराण (6.239.31) के निर्देश 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात द्विज उच्चते' अर्थात जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं और संस्कार द्वारा ही सवर्ण बन सकते हैं, को नकारते हुए, समाज ने वर्ण-व्यवस्था को जन्म पर आधारित कैसे बना दिया? समाज का वर्ण-आधारित संदर्भ, महाभारत से पूर्व, वाल्मीकि की रामायण में भी आता है। इस आधार पर संभवतः यह कहा जा सकता है कि मनु ने समाज में प्रचलित व्यवस्था को लिपिबद्ध

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 54

करके एक आचार-संहिता का रूप दिया था। संभव यह भी है कि उन्होंने ही तत्कालीन लोक व्यवहार को, अपनी बुद्धि एवं मान्यता के अनुसार, परिभाषाओं का रूप भी दिया हो। किंतु उनके द्वारा परिभाषित नियम, संपूर्ण समाज के लिए या आज की व्यवस्था में संपूर्ण हिंदू समाज की लिए, मान्य कैसे बन गए?

इस विश्लेषण के लिए बहुत पीछे नहीं जाना होगा। यह सर्वविदित है कि भारत पर अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद ही, जब अंग्रेजों ने देश के लिए कोई आचार-संहिता बनाने की बात सोची तब उनका ध्यान समाज में प्रचलित मान्यताओं की ओर भी गया। तब, समाज मूल रूप से मुसलमानों तथा हिंदुओं में विभाजित था, जिनकी नितांत अलग तरह की परंपराएँ थी। मुसलमानों के रीति-रिवाज कुरआन, सुन्नत तथा हदीस पर आधारित हैं यह बात भी सर्व-विदित थी। किंतु दूसरे विशाल जन-समुदाय के लिए कोई ऐसी आचरण संहिता उन्हें नहीं मिली, या कहें कि कोई थी ही नहीं। संपूर्ण भारत में बिखरे हिंदुओं की 'धर्म' पर आधारित एक ऐसी आचरण शैली थी जो 'रिलीजन', संप्रदाय अथवा मजहबपरस्त बुद्धि से परे थी। अंग्रेजी अथवा उर्दू में 'धर्म' का कोई समतुल्य शब्द नहीं होने के कारण उन्होंने, अपनी बुद्धि अनुसार, धर्म को भी रिलिजन का ही पर्याय माना। इसी प्रकार उस नए 'रिलिजन' की कोई आचार-संहिता न मिलने पर उन्होंने हजारों वर्ष पुरानी 'मनुस्मृति' को ही हिंदुओं की आचार संहिता मान लिया।

मनुस्मृति के रचना काल तक ही वर्ण-व्यवस्था में संकर-वर्ण के रूप में अनेक वर्ग भ्रम उत्पन्न करने लगे थे। स्वयं मनु भी यह नहीं कह सकते थे कि कालांतर में कोई वर्ण अपना स्वरूप यत्किंचित भी सुरक्षित रख पाएगा और हुआ भी वही। आज, 'मनुस्मृति' के रचना काल के हजारों वर्ष बाद, कौन ब्राह्मण कह सकता है कि वह, ब्राह्मणों के लिए निर्धारित नियम एवं आचरण को देखते हुए, सच्चा ब्राह्मण है? वर्ण व्यवस्था का सबसे बड़ा दुष्परिणाम सवर्णों द्वारा शूद्रों पर होने वाला अत्याचार कहा जाता है। यह भी सच है कि किसी भी प्रकार के अत्याचार को, किसी भी दृष्टि से, शास्त्र-सम्मत अथवा धर्म-सम्मत नहीं ठहराया जा सकता। 'मनुस्मृति' में, कुछ अपराधों के लिए ब्राह्मणों को कम दंड और शूद्रों को कठोर दंड देने की व्यवस्था है, जिसे न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है, साथ ही यह भी ज्ञातव्य है कि उसी 'मनुस्मृति' में कुछ अपराधों के लिए शूद्र को कम तथा ब्राह्मण को अधिक दंड देने की व्यवस्था भी हैं। मनुस्मृति में ही निर्देश यह भी है कि, चोरी करे तो, ब्राह्मण शूद्र की अपेक्षा आठ गुने पाप का भागी होता है, क्योंकि शूद्र अज्ञानवश चोरी करता है किंतु ब्राह्मण को चोरी के गुण-दोष का सर्वाधिक ज्ञान होता है। (8:338)

'मनुस्मृति' में, ब्राह्मणों के लिए निर्धारित नियम आदि भी किसी 'कठोर दंड' से कम नहीं हैं। ब्राह्मणों के लिए निर्देश है कि वे सूर्योदय से दो घड़ी पूर्व उठें और स्नानादि दैनिक कार्यों तथा देवाराधना के बाद अध्ययन-अध्यापन में लग जाएँ। दान, दक्षिणा के रूप में जो कुछ भी समाज उन्हें 'बिन-माँगे' दे उसी से जीवन निर्वाह करें। कभी किसी से कुछ माँगें नहीं भूखे हों, तब भी (4:187)। अपने विद्यार्थियों से भी कोई शुल्क न माँगें। समाज में अनैतिक कार्य में संलग्न किसी व्यक्ति के यहाँ न तो कोई पूजा-अनुष्ठान कराएँ और न उससे कोई दक्षिणा लें। शूद्र से कदापि धन न लें (11:24) निर्देश यहाँ तक है कि पचास वर्ष से अधिक आयु हो जाने पर, ब्राह्मण सभी सुविधाएँ त्याग दे; एक स्थान पर ही बैठा अथवा खड़ा रहे और यह भी, कि ग्रीष्म काल में, अपने चारों ओर अग्नि जला कर बैठे और शीतकाल में भीगे अंग-वस्त्र पहन कर ठिठुरती हवा में खड़ा रहे (6:1,2,3,22,23)। यह निर्देश तो प्राण त्यागने के आदेश जैसा है।

ब्राह्मणों का एकमेव निर्दिष्ट कर्म था अध्ययन और अध्यापन। अपने भौतिक सुख के लिए उनको किसी भी

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 55

प्रकार के वैश्य कर्म, अर्थात् धन कमाने वाले कर्म, का निषेध था। धन-भंडारण का भी निषेध था (4:8)

स्पष्ट निर्देश यह भी है कि ब्राह्मण अन्न-भंडारण न करे (4:7,8); छली-कपटी के घर न जाए, न ठहरे (4:30); द्यूत-क्रीड़ा कदापि न करे (4:74)। निर्देश यह भी है कि जो मात्र जाति से ब्राह्मण हो किंतु वेद-ज्ञान से रहित हो, उसे शूद्र कहना ही उचित है (2:106)। यह भी निर्देश है कि यदि कोई भी सवर्ण वैश्य, क्षत्रिय एवं ब्राह्मण चोरी करे तो वे शूद्र की अपेक्षा क्रमशः दुगने, चौगुने एवं आठ गुने पाप के भागीदार है (8:336-37)।

इसी प्रकार 'मनुस्मृति' में अनेक बंधन क्षत्रिय तथा वैश्य समुदाय के लिए भी वर्णित हैं, जिनकी कसौटी पर आज कोई भी सवर्ण कहलाने का अधिकारी नहीं होगा। उस हजारों वर्ष पुराने वर्गीकरण के आधार पर, आज कोई अपने को सवर्ण समझकर और अन्य किसी (अर्थात् शूद्र) को निम्न वर्ण का मानकर उसकी अवहेलना करे, अथवा उसका निरादर करे, तो वह अज्ञानता ही नहीं, धूर्तता भी होगी।

वर्तमान समय में, वर्ण-विभाजन का कोई औचित्य भले ही न हो, इस व्यवस्था का दुरुपयोग हुआ है। यह दुरुपयोग स्पष्ट है कि वे ही कर सकते थे, जिनके पास अधिक अधिकार थे अर्थात् सवर्ण, और उन में भी विशेष रूप से ब्राह्मण। किंतु विडंबना यह रही कि ब्राह्मणों ने और अन्य सवर्णों ने भी, कभी यह नहीं सोचा कि वे किस आधार पर ब्राह्मण हैं... किस आधार पर सवर्ण हैं? आधार के रूप में पितरों की जाति ही उनकी एक मात्र कसौटी थी। पिता ब्राह्मण तो संतान भी ब्राह्मण। यदि पिता सवर्ण, तो संतान भी सवर्ण। यदि पिता शूद्र तो संतान भी शूद्र। इस वर्णगत विभाजन का दुरुपयोग, कुछ अंशों में, संभवतः पहले भी रहा हो किंतु देश की पराधीनता काल में वर्ण-व्यवस्था का दुरुपयोग उत्तरोत्तर अमानवीय रूप लेता चला गया। कारण यह कि पराधीनता काल, जो कि समाज के लिए आपातकाल था, में हमारे संचित ज्ञान के शास्त्र जलाए गए और जनसाधारण को प्रताड़ित-अपमानित कर के भुखमरी के कगार पर फेंक दिया गया था, भला कौन वेदों-शास्त्रों का अध्ययन करता और कौन नई पीढ़ी को कर्म-अकर्म का भेद समझाता? पेट पालने के लिए जिसे जो भी काम मिला, वह करने लगा। गुरु-शिष्य परंपरा का अंत हो गया और लोग दो समय के भोजन के लिए मजदूरी तथा भिक्षा-वृत्ति का मार्ग भी अपनाने लगे। ऐसे में, समाज द्वारा स्वैच्छिक दान-दक्षिणा प्राप्त करने के अभ्यस्त कुछ ब्राह्मणों ने धर्माचरण की महत्ता समझाकर, अन्य लोगों से अधिकार के साथ दान-दक्षिण पाने का मार्ग अपनाया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

पराधीनता की इस लंबी अवधि में कर्म-आधारित वर्ण-भेद अपनी पहचान खोकर पूरी तरह अर्थहीन हो गया। किंतु उस वर्णभेद का लाभ जो भी, जितना भी, उठाने की स्थिति में था, वह लेने का प्रयास करता रहा। ऐसे वातावरण में अमानवीय व्यवहार ही पनप सकता था। आज अधिकांश तथाकथित सवर्ण ही अपने नाम के साथ जाति नाम लगाते हैं। स्पष्ट है कि उनका यह व्यवहार मात्र यह ढिंढोरा पीटने के लिए होता है कि 'मैं शूद्र नहीं हूँ?'

वर्ण-व्यवस्था और उसके साथ ही सभी वर्ण के लोगों को अपने स्वभाव के अनुरूप ही कर्म के प्रति समर्पित रहने का परामर्श, इस उद्देश्य से था कि समाज में सभी वर्णों का संतुलित विकास होता रहे। सभी क्षेत्रों में काम करने वाले सुयोग्य कर्मी निरंतर उपलब्ध रहें। अन्यथा, यह भय तो सदैव ही बना रहता है कि 'उस

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 56

पार की घास...' के आकर्षण में लोग अपनी स्वाभाविक प्रकृति को भुलाकर कभी एक कार्य सीखने लगें, तो कभी कोई नितांत अलग प्रकार का। इस प्रकार की भटकन जन-मानस में असंतोष उत्पन्न करने के साथ ही समाज के लिए भी हितकर नहीं होती। आज के विज्ञान एवं तर्क-आधारित युग में भी मान्य परंपरा यह है कि बचपन से ही मनौवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा बच्चों की प्रकृति को पहचाना जाए और उन्हें उसी के अनुरूप शिक्षा देकर भविष्य में एक विधा-विशेष में काम करने के लिए तैयार किया जाए।

स्पष्ट है, कि आज के समय में, जबकि बच्चों की मानसिकता पर, बहुत छोटी आयु से ही, भाँति-भाँति के प्रभाव पड़ते रहते हैं, यह परामर्श नहीं दिया जा सकता कि बच्चा वही कर्म अथवा व्यवसाय अपनाए जो उसके पिता करते थे अथवा जो उसके परिवार में होता आया है। आज जहाँ बच्चा वह सब देखता और सीखता है जो उसके परिवार में हो रहा है, वहीं बहुत कुछ वह सब भी सीखता रहता है, जो वह अपने स्कूल में भाँति-भाँति की प्रकृति वाले अध्यापकों तथा सहपाठियों में देखता है। बहुत कुछ अपने पड़ोसियों से भी सीखता और प्रभावित होता है और फिर भाँति-भाँति के खेल-तमाशों, टी.वी. आदि के माध्यम से तो सारे संसार का परिदृश्य उसके मन तथा उसकी महत्त्वाकाँक्षाओं पर प्रभाव डालता रहता है।

प्राचीन काल की वर्ण-व्यवस्था का विरोध, उग्र विरोध भी, विशेषतया मनुस्मृति में वर्णित शूद्रों की स्थिति एवं उनके अधिकारों को लेकर है। दिए गए नियमों के कुछ प्रावधान तो अत्यंत अमानवीय हैं। किसी का, किसी के भी प्रति, अमानवीय दुर्व्यवहार अनुचित है। उसे किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं किया जा सकता। उसकी भर्त्सना ही की जानी चाहिए।

किसी अस्वीकार की, किसी निंदा की भी मर्यादा होनी चाहिए। अपराधी को भी अपना पक्ष, अपना दृष्टिकोण, स्पष्ट करने का अवसर देने में भी मानवीय गरिमा है। आज मनु (अथवा वे जिन्होंने मनु के नाम से वह आचार संहिता रची) जीवित नहीं हैं कि अपनी ओर से कोई स्पष्टीकरण दे सकें। ऐसी स्थिति में उचित यह है कि निरंतर मनु अथवा उनकी संहिता के प्रति आक्रोश प्रकट करने के स्थान पर उस संहिता को प्रशासन की ओर से नकार दिया जाए अथवा संपादित करके उसके आपत्तिजनक अंशों को निकाल दिया जाए।

ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि वह आचार संहिता मात्र किसी एक मनु की, अथवा उनके शिष्य समूह की, विचारधारा का आमुखग्रंथ है। मनुस्मृति के नियम आदि कभी भी समाज पर आचार संहिता के रूप में लागू नहीं थे किसी प्राचीन ग्रंथ में यह उल्लेख नहीं मिलता कि उसमें बताए गए दंड-विधान के आधार पर किसी को दंड दिया गया था। यह भी संभव है कि मनुस्मृति के रचना काल की वाचिक परंपरा से आज के बीच उसमें अनकानेक प्रक्षेपित विचार भी जुड़े हों। साथ ही, कुछ ऐसे प्रावधान भी आपत्तिजनक लगते हैं- जैसे कि शूद्र को सेवा के बदले मजदूरी माँगने का अधिकार न होना। यह सोचने में ही बहुत बड़ा अन्याय लगता है कि शूद्र अपने निर्धारित कर्तव्यवश सेवा तो करे, किंतु उसे समुचित मजदूरी न मिले। किंतु दूसरी ओर ब्राह्मणों के लिए भी ऐसा ही प्रावधान है। निर्देश है कि ब्राह्मण निरंतर अध्ययन-चिंतन में लगे रहें, शिक्षा दें, यज्ञ कर्म आदि कराएँ किंतु बदले में कुछ भी न माँगें। ब्राह्मण के लिए तो धन-उपार्जन करने के लिए किसी भी प्रकार का वैश्य कर्म भी वर्जित है। वे दूध भी नहीं बेच सकते। पापकर्म द्वारा धन अर्जित करने वाले धनी के यहाँ यज्ञ कर्म कराना अथवा उनसे दान-दक्षिणा लेना भी उनके लिए निषिद्ध है (8:339)। विचित्र है न? तो ब्राह्मण क्या भूखा मरे? नहीं, न तो ब्राह्मण साधन विहीन रहे और न शूद्र।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 57

वास्तव में, 'मनु स्मृति' के नियम उस काल खंड के लिए थे जो पूर्णरूपेण कर्तव्य-आधारित था। ब्राह्मण बिना प्रतिदान की अपेक्षा किए अपने कर्तव्य का पालन करता रहता था और कृतज्ञ समाज कर्तव्यपालन-स्वरूप, बिना माँगे ही, उसकी आवश्यकता भर अन्न, धन, वस्त्र आदि उसे देता रहता था। उसी प्रकार यह आशा की जाती थी शूद्र जब भी, जहाँ भी, जिसकी भी सेवा करेगा, उसे उसकी सेवा का समुचित पुरस्कार प्राप्त होता रहेगा। आश्चर्य नहीं कि आज के अधिकार-आधारित समाज में यह सोचा भी नहीं जा सकता कि बिना माँगे और आज की मनःस्थिति में बिना लड़े, किसी को उसका पारिश्रमिक कैसे मिलता होगा!

इसका एक और स्पष्ट उदाहरण है। आज बहु-प्रचलित धारणा यह है कि भारतीय परंपरा में, पैतृक संपत्ति में बेटी का कोई भाग नहीं होता। किंतु वास्तविकता यह नहीं है। पैतृक संपत्ति में पुत्रों के बीच संपत्ति विभाजन के नियमों के तुरंत बाद, नवें प्रकरण के 117 वें श्लोक में, यह उल्लेख है कि सभी भाइयों का यह धर्म है कि वे अपने-अपने भाग का चतुर्थांश निकाल कर बहनों को दे दें। इससे भी अलग, बेटी के विवाह के अवसर पर कन्या-धन अथवा दहेज (जो आज बहुत बदनाम शब्द है) के नाम पर दिया जाने वाला धन भी पैतृक संपत्ति में बेटी का भाग, बिना माँगे, सम्मानपूर्वक उसे हस्तांतरित करने का ही एक बड़ा शोभनीय ढंग था, जिसे आज पूर्णतया नकार कर बेटी द्वारा कानूनी ढंग से, पैतृक संपत्ति में अपना भाग प्राप्त करना ठीक माना जाता है।

कहने को तो यह भी कहा जाता है कि मनुस्मृति नारी-विरोधी है किंतु उसमें कुछ नियम ऐसे भी जो पुरुष विरोधी हैं और कुछ ऐसे जो बड़े भाई के प्रति उदार तथा छोटे भाइयों के प्रति अन्यायपूर्ण हैं। लेकिन उस काल में वर्ण व्यवस्था की जो रूपरेखा थी उसकी वर्तमान संदर्भ में न तो कोई उपयोगिता है और न हो ही सकती है। आज की स्थिति में यह मान लेना कि संतान पैतृक व्यवसाय ही अपनाएगी अथवा पैतृक मान्यता एवं जीवनशैली के अनुरूप ही जीवन जिएगी, मूर्खता की सीमा तक निराधार है। फिर इस स्थिति में इस मान्यता का कोई आधार हो ही नहीं सकता कि सौ अथवा दो सौ पीढ़ियों पहले परिवार का जो आचरण था, जो जीवन शैली एवं व्यवसाय था, वह उस परिवार में जन्में बच्चों में निरंतर बना रहा होगा। मनुस्मृति को बहाना बनाकर जिसे जहाँ लाभ दिखा वह अपना हित साधता रहा और जिसे हंगामा करने का मुद्दा मिला वह जनता के बीच असंतोष फैलाकर स्वयं मसीहा बनता रहा। फिर भी, राजनीति एवं छद्म-बौद्धिकता के नाम पर आज मनु को निरंतर कोसा जाता है। यदि मनु को कोसने अथवा गाली देते रहने से कोई हल निकल सके तो अवश्य ऐसा किया जाए, किंतु आज तक तो न यह भेद मिटा और न इसके मिटने के कोई संकेत हैं। इसके विपरीत जाति विभाजन रेखांकित होकर और भी महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है। मनु का विरोध करने वालों में कितने हैं, जिन्होंने समाज के बीच खड़ी इन कृत्रिम दीवारों को गिराने का कोई सार्थक प्रयास किया? अब भी, जहाँ तथाकथित सवर्ण अपने जाति नाम मात्र यह प्रचारित करने के लिए लगाते हैं कि वे शूद्र नहीं हैं, तथाकथित नीची जाति वाले जाति के आधार पर कुछ अनुदान, भूमि अथवा आरक्षण के नाम पर नौकरी पाने के लिए अपनी जाति का उल्लेख करते रहते हैं। आश्चर्य है कि हमारी सरकार जो कि कानून बना कर नीची जाति के नाम के उल्लेख को भी दंडनीय अपराध बना चुकी है, वैसा ही अथवा उससे भी कठोर कानून बनाकर किसी भी रूप में जाति के उल्लेख अथवा व्यवहार को दंडनीय अपराध क्यों नहीं बना सकती?

लेखक सामाजिक चिंतक और वरिष्ठ साहित्यकार हैं।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 58

खान-पान में थोड़ी सी भी असावधानी बरते जाने से पेट गड़बड़ हो जाता है। गर्मियों व बरसात में इस समस्या से बच्चे बहुत ज्यादा प्रभावित होते हैं। अतः बच्चों के खान-पान पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता रहती है। क्योंकि थोड़ी सी भी लापरवाही बच्चों के लिए बहुत हानिकारक हो सकती है।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 59

डॉ. ज्योत्स्ना

उलटियाँ होने पर बरतें सावधानी

गर्मी व बरसात के मौसम में खान-पान की असावधानी से उलटियों का होना सामान्य-सी बात है। इससे विशेष रूप से बच्चे बहुत प्रभावित होते हैं। कई बार उलटियाँ इतनी ज्यादा होती हैं कि शरीर में पानी की बहुत कमी हो जाती है। गर्मियों में जब शरीर से पसीने के रूप में पानी बहुत निकलता है तब शरीर को पानी की आवश्यकता स्वभाव से ही अधिक होती है। ऐसे में यह रोग अत्यंत घातक सिद्ध हो जाता है। कभी-कभी उलटियों को सामान्य-सी शिकायत समझ लेने के कारण अन्य आवश्यक अनुकूल चिकित्सा मिलने में भी देर हो जाती है। इसलिए इस सामान्य से लगने वाले रोग को समझना आवश्यक है।

उलटियाँ

◆ **क्यों होती हैं?**

उलटियाँ बहुत से अन्य रोगों के कारण होती हैं। परंतु कुछ सामान्य कारण जैसे अधिक भोजन, असमय भोजन, अपचन, दूषित भोजन, गर्भावस्था व वायरल इंफेक्शन आदि हैं। ये उलटियाँ सामान्य उपायों से या अपने आप ही ठीक हो जाती हैं।

◆ **ऐसे रोग जिनमें उलटियाँ हो जाती हैं-**

▶ दूषित भोजन से (Food Poisoning)

▶गला खराब होने पर (Tonsillitis)

▶आँतों में कुछ गंभीर समस्याओं में इनमें साथ-साथ पेट में तेज दर्द होता है।

- एपेंडिक्स की सूजन (Appendicitis)
- आँत के उलझ जाने पर तथा आँत में कुछ फँस जाने से (Intestinal obstruction)
- पित्त की थैली के दर्द से (gall stone)
- मूत्र मार्ग का संक्रमण या

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 60

पथरी (Renal stone)

- मलेरिया
- सामान्य अम्ल पित्त
- गर्भावस्था
- माइग्रेन में तेज सिरदर्द के कारण

◆ **छोटे बच्चे जो स्वयं कुछ नहीं बता पाते उनमें सामान्य उलटियों के समय क्या करें?**

यदि छोटे बच्चों को उलटियाँ हो रही हैं तो पहले यह पहचानना जरूरी है कि शरीर में पानी की कमी न हो जाए। इसलिए माँ से पूछकर जानें कि कितनी उलटियाँ हुई, पेशाब आ रहा है या नहीं क्योंकि यदि पानी की कमी होगी तो पेशाब नहीं आएगा। खुद भी देखना जरूरी है कि बच्चा देखने में सामान्य है या नहीं, सुस्त न हो, आँखें सूखी और धंसी तो नहीं लगती, जीभ सूखी तो नहीं है? तालू बैठा तो नहीं है। और एक सामान्य तरीका है कि उसकी त्वचा को चुटकी से उठाकर देखें यदि पानी की कमी नहीं है तो वह तुरंत सामान्य हो जाएगी, किंतु पानी की कमी होने के कारण वह सामान्य नहीं हो सकेगी। बड़े बच्चों में तथा अन्य बड़े व्यक्तियों में भी पानी की कमी का विशेष ध्यान रखें।

◆ **यदि शरीर में पानी की कमी नहीं है तो ऐसी स्थिति में क्या करें?**

▶ यदि बच्चा बहुत छोटा है तो माँ के भोजन का ख्याल रखें और उसे सौंफ, अजवायन तथा जीरा आदि दें।

▶ माँ बार-बार बच्चे को दूध पिलाए, चार महीने तक माँ के दूध के अलावा कुछ न दें। यदि बच्चा थोड़ा बड़ा हो तो पानी उबाल कर ठंडा करके दें। (गर्मियों में)

▶ बच्चा थोडा बड़ा है तो शहद में सुहागा दें उसका पाचन ठीक हो जाएगा व तरल पदार्थ दें। तरल पदार्थ बार-बार और थोड़ा-थोड़ा करके दें।

- सौंफ का पानी (काढ़ा)
- अजवायन का काढ़ा
- पुदीना का काढ़ा
- सौंफ और धनिये को उबाल कर उसका काढ़ा ठंडा करके दें।
- नींबू, पानी, नमक व चीनी मिलाकर दें।

◆ **बड़े लोगों में सामान्य उलटियाँ हैं तो क्या करें?**

उलटियों को रोकने का प्रयास न करें। अपचन ठीक होने पर उलटियाँ स्वतः रुक जाएंगी। किंतु सावधानी के तौर

अदरक

अदरक का प्रयोग कई बार लोग गर्मी के मौसम में बंद कर देते हैं लेकिन यह पाचन के लिए अत्यावश्यक है। अतः इसका उपयोग करना चाहिए।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 61

- अदरक का प्रयोग शहद के साथ सामान्य खाँसी, जुकाम-बुखार में तथा साँस रोग में किया जा सकता है।
- अदरक के रस में प्याज का रस मिलाकर देने से उलटी व बेचैनी कम होती है।
- अदरक के टुकड़े को नमक, नींबू लगाकर चूसने से भूख बढ़ती है और खाना ठीक से पचता है।
- अदरक का रस शहद के साथ पानी मिलाकर पीने से उलटी और दस्त में आराम मिलता है।
- अदरक को नमक लगाकर चूसने से बलगम आसानी से निकलता है व गला साफ होता है।
- अदरक का रस गर्म करके कान में डालने से कान के दर्द में आराम मिलता है।
- मूत्र कृच्छ में पेशाब कम आ रहा हो तो अदरक का रस देने से पेशाब खुल कर आता है। इसलिए पेट में जब पानी भरा हो तो भी पानी निकालने के लिए इसका प्रयोग करते हैं।
- सावधानी- पुराने हृदय रोग में तथा वृक्क रोग में प्रयोग सावधानी से कम करें। निद्रानाश और अम्ल पित्त व जलन हो तो प्रयोग न करें।
- अदरक के रस में चीनी मिलाकर शरबत पका कर लेने से पेट में गैस बनना, अपचन गैस में दुर्गंध और पेट दर्द व पतले दस्त बंद होते हैं।
- प्रसूताओं के लिए अदरक को पीसकर उसमें गुड़ और घी मिलाकर पकाकर देने से प्रसूति समस्याएँ नहीं होती, भूख ठीक से लगती है।
- वृद्धों में सोंठ को दूध में पका कर देने से हाथ-पैर में दर्द और घबराहट दूर होती है।
- बवासीर में गुड़ के साथ लेने से लाभ।
- सौंठ का चूर्ण सूंघाने से हिचकी रुक जाती है।
- ठंड के कारण सिरदर्द हो तो सौंठ को पानी में घिसकर माथे पर लगाएँ।
- हाथ-पैर ठंडे होने पर अदरक का काढ़ा पिलाएं व रस से हाथ-पैर पर मालिश करें।
- अपथ्य के कारण पेचिश में एरंड तेल के साथ दें। दूषित आम निकल जाता है।
- दस्तों में सौंठ को सौंफ के साथ दें।
- शीत-पित्त में अदरक का रस व शहद लाभ करता है।

पर निम्न उपाय किए जा सकते हैं-

▶ चाय में (बिना दूध की) अदरक या नींबू का रस लें।

▶ अदरक के रस में या अदरक-नींबू के रस में पानी मिलाकर लें।

▶ सौंफ को चबा-चबा कर खाएँ।

▶ प्याज का रस एक चम्मच लें अथवा प्याज का रस एक चम्मच और एक चम्मच अदरक का रस मिलाकर लें।

▶ पुदीना की चटनी बनाकर पानी में मिलाएं और नमक व नींबू मिलाकर दें। अदरक का रस भी मिला सकते हैं।

▶ लहसुन की कुछ कली (3-4) को एक कप पतले दूध में पकाकर धीरे-धीरे पिएँ।

▶ कड़ी पत्ता 10 लेकर पीसकर उसमे शहद व नींबू मिलाकर या साथ में पुदीना मिलाकर भी ले सकते हैं।

▶ सोंठ के काढ़े में सोडा मिलाकर देने से उलटी रुकती है।

लेखिका अलीगढ़ यूनानी आयुर्वेदिक कॉलेज में प्रोफेसर हैं।

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 62

मनोगत

मान्यवर महोदय,

आपके स्नेह के बल पर 'मंगल विमर्श' का जुलाई अंक प्रस्तुत है। पत्रिका के सुधी पाठकों से प्राप्त प्रतिक्रियाएँ हमारे लिए मार्गदर्शक होती हैं। केंद्रीय हिंदी संस्थान के उपाध्यक्ष डॉ. कमल किशोर गोयनका ने अपने पत्र में लिखा है कि 'मंगल-विमर्श' पत्रिका अमंगल के बीच मंगल-विमर्श है- तुलसीदास ने कहा है- 'मंगल भवन अमंगल हारी'। अमंगल के हरण के लिए यह मंगल

की यात्रा है। अतः स्वागत है और मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। इतनी विचारपूर्ण तथा चिंतन एवं भारतीयता की दृष्टि से पत्रिका का स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी आप इतनी महत्त्वपूर्ण पठनीय सामग्री देते रहेंगे और देश की सांस्कृतिक-राष्ट्रीय चिंतन धारा को निरंतर बलवती बनाते रहेंगे।

'मंगल विमर्श' द्वारा आयोजित की जाने वाली संगोष्ठियों के क्रम में 21 फरवरी को 'सामाजिक समरसता' संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी में प्रायः सभी वक्ताओं ने हरियाणा में चल रहे जातिगत आरक्षण आंदोलन और जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में छात्रों के एक वर्ग द्वारा भारत विरोधी नारे लगाए जाने और आंदोलन किए जाने के संदर्भ में कहा कि सामाजिक समरसता के मार्ग में राजनीतिक स्वार्थ सबसे बड़ा अवरोध है अतः यह कार्य सामाजिक स्तर पर किए जाने की आवश्यकता है इसी दृष्टि से 24 अप्रैल को 'कैसे बढ़े सामाजिक समरसता' विषयक संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

'राष्ट्र किंकर' के संपादक डॉ. विनोद बब्बर ने कहा कि सामाजिक समरसता को जाति से मान लिया जाता है जो वस्तुतः ठीक नहीं है। भारतीय परंपरा में जाति को लेकर कोई भेदभाव नहीं है. जाति का आधार मर्म से था। तदोपरांत जाति को ऊँच-नीच से जोड़ दिया। राजनेता अपने हित साधने के लिए जातिवाद का सहारा लेते हैं। सामाजिक समरसता के लिए सामाजिक आंदोलन की जरूरत है। आर्यसमाज का आंदोलन सामाजिक समरसता का प्रबल उदाहरण है।

दिल्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत के विभागाध्यक्ष डॉ. रमेश भारद्वाज ने कहा कि निहित स्वार्थों के कारण ऐसा दुष्प्रचारित किया गया कि हिंदू समाज दलित विरोधी

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 63

है, परस्पर वैमनस्य रखनेवाला है, हिंदुस्तान विभाजक समाज है और भारत कोई राष्ट्र नहीं है। शंकराचार्य जी का सामाजिक समरसता की दृष्टि से विशेष योगदान है। क्षेत्रवाद/जातिवाद ने शिक्षा जगत को बहुत क्षति पहुँचाई है, आज इस अंधकार को काटने का अच्छा मौका है। देश की शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. अवनिजेश अवस्थी ने कहा कि यह कड़वी सच्चाई है कि हर क्षेत्र में जातिवाद ने अपनी पैठ बना ली है, विभिन्न संस्थाओं के चुनाव जाति के आधार पर होते हैं, ऐसे में क्या जाति विहीन समाज की संभावना है ? उन्होंने कहा कि हमें अपने तुच्छ स्वार्थ को छोड़कर राष्ट्रहित में सोचना चाहिए। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. सुधीर सिंह ने कहा कि देश में सदा सामाजिक समरसता रही है लेकिन विदेशी आक्रमणों और अंग्रेजों के शासन के दौरान इसमें गड़बड़ियाँ आ गईं, इन्हें दूर करने की जरूरत है। उन्होंने कहा कि आचार-विचार सामाजिक समरसता एक रूप होनी चाहिए।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् में प्राध्यापक डॉ. प्रमोदकुमार दुबे ने कहा कि हमारी समरसता तोड़ने के लिए अंग्रेजों ने काफी कोशिश की। सत्ता किसी की भी हो समाज अपने ढंग से चलता है। सभी जातियां श्रेष्ठ हैं। परस्पर मित्रता में जाति गौण हो जाती है। एकात्म दर्शन के विभिन्न आयाम हैं। इसमें सामाजिक समरसता कूट-कूट कर भरी है। समाज में समरसता के लिए वैचारिक और बौद्धिक स्तर पर कार्य करने की जरूरत है। उन्होंने कहा कि अध्यात्म एकात्मता का वाहक है। संत साहित्य में समरसता का संदेश है। आज समाज में भावनात्मक एकात्मता की आवश्यकता है।

गुरु गोविंद सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय में प्रबंधन-विकास विभाग के निदेशक डॉ. राजकुमार मित्तल ने कहा कि आर्थिक विषमता के कारण सामाजिक समरसता में खामियां आई हैं। आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए गांवों में कौशल विकास पर जोर दिया जाना चाहिए जिससे वहां युवकों को सरलता से रोजगार मिल सके।

डॉ. रवींद्र अग्रवाल ने कहा कि विश्व में एकमात्र भारतीय समाज है जो समाज की विविध आवश्यकताओं- बौद्धिक, सुरक्षा, आर्थिक और सेवा संरचना के आधार पर वर्गीकृत है। आज इस वर्गीकरण में कुछ खामियाँ आ गई हैं जिन्हें समय के अनुरूप सुधारने की आवश्यकता है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व प्राध्यापक डॉ. नेमकुमार जैन ने कहा कि एकात्म मानववाद सामाजिक समरसता का मूलमंत्र है। दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व प्राध्यापक प्रो. राजवीर शर्मा ने कहा कि आज भी गांवों में जितनी सामाजिक समरसता है उतनी शहरों में नहीं है। चिंता की बात है कि सामाजिक मान्यताओं का ह्रास हो रहा है और राजनीतिक मूल्य हावी हो रहे हैं। समाज में इर्ष्या, द्वेष और विद्रोह की भावना को कमजोर करना

july2016Final:Layout 1 7/4/2016 3:42 PM Page 64

होगा। समता से समरसता होगी, हम 'सहभोज'- संघ विचार से सामाजिक समरसता ला सकते हैं।

वरिष्ठ पत्रकार प्रमोद सैनी ने कहा कि गरीबी व असमानता की वजह से सामाजिक समरसता का अभाव है। हमें विचार करना चाहिए कि सामाजिक समरसता के लिए हम व्यक्तिगत स्तर पर क्या कर सकते हैं, इस दृष्टि से उन्होंने देश में व्यक्तिगत स्तर पर चल रहे सेवा प्रकल्पों का उल्लेख किया जिनसे व्यक्ति में आत्मविश्वास के साथ ही समरसता का भी भाव जाग्रत हो रहा है। वरिष्ठ साहित्यकार आनन्द आदीश ने कहा कि हमें अपने समाज की कमियों पर पर्दा डालने के स्थान पर उन्हें सुधारने का प्रयास करना चाहिए। उन्होंने कहा कि समता से समरसता आती है। हिंदू समाज को सांस्कृतिक रूप से सुरक्षित रखने के लिए सामाजिक समरसता आवश्यक है।

भारत के पूर्व राजदूत ओ. पी. गुप्ता ने कहा कि हमारे वेद सामाजिक समरसता के लिए एक अच्छा माध्यम हैं। पुरुष सूक्त में विराट पुरुष का वर्णन शरीर के रूप में है- मस्तिष्क ब्राह्मण है, भुजाएँ क्षत्रिय, उदर वैश्य और पैर शूद्र। शरीर में सब अंगों का महत्त्व बराबर है, सब में संतुलन आवश्यक है। शरीर तभी सुदृढ़ होगा जब सभी अंग स्वस्थ और सशक्त होंगे। अगर समाज को बलवान होना है तो समाज में धर्मानुसार आचरण करना चाहिए। ऋग्वेद में महिलाओं की सहभागिता थी। ऋग्वेद में विवाह मंत्र की उत्पत्ति महिला ऋषि ने की। भारतीय समाज ने समय-समय पर बुराइयों का निराकरण किया है, आज समाज में जो बुराइयाँ हैं उनका भी निराकरण करने की आवश्यकता है। श्री संदीप जिंदल एडवोकेट ने कहा कि आज के टीवी धारावाहिक पारिवारिक विघटन को बढ़ावा दे रहे हैं। इनके प्रति जागरूक रहने की जरूरत है।

प्रो. हरिमोहन शर्मा ने कहा कि 1990 से प्रारंभ हुए उदारीकरण और वैश्वीकरण से सामाजिक समरसता को खतरा उत्पन्न हो गया है। इससे समाज में विषमता बढ़ गई है, उन्होंने कहा कि स्व. भाऊराव देवरस और दीनदयाल उपाध्याय जी के विचार सोशल इंजीनियरिंग के आदर्श उदाहरण हैं जो आज समाजोपयोगी हैं।

मंगल विमर्श के प्रधान संपादक ओमीश परुथी ने अपने समापन संबोधन में कहा कि हिंदू धर्म को निकृष्ट सिद्ध करने के कुप्रयास किए गए। शिक्षित वर्ग भी जातिप्रथा की बात करे तो शर्मनाक है। विचार और आचार में अंतर के कारण समाज में समरसता नहीं है। समता के लिए ममता की जरूरत है। दीनदयाल उपाध्याय जी का एकात्म मानववाद ही सामाजिक समरसता की पूर्णता है। 'मंगल सृष्टि' के सचिव तिलक चानना ने कहा कि समाज में संतुलन आवश्यक है, जब भी संतुलन बिगड़ता है तभी समरसता गड़बड़ाती है। इस संतुलन को पुनः स्थापित करने की जरूरत है, समाज में जो विषमताएँ जन्म से जुड़ी हैं, वे अतार्किक हैं, उन्हें जड़ से दूर करना होगा और कर्म में भेदभाव समाप्त करने की दृष्टि से सबको समान अवसर मिलने चाहिएँ।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

सहयोगी वृंद

1. श्री राजेश यादव
ई-1, 10/09, सेक्टर-15,
रोहिणी, दिल्ली-110085

2. श्री श्रीकांत
डी-26, अशोक विहार, फेज-1
नई दिल्ली-110052

3. श्री महेश
डी-26, अशोक विहार, फेज-1
नई दिल्ली-110052

4. श्री पवन
डी-26, अशोक विहार, फेज-1
नई दिल्ली-110052

5. श्री गोविंद
डी-26, अशोक विहार, फेज-1
नई दिल्ली-110052

6. श्री एन.सी. माहेश्वरी
17ए/55, तृतीय तल, फारसाईट, त्रिवेणी प्लाजा
गुरुद्वारा रोड, करोल बाग, दिल्ली-110005

7. एनडीकॉन कंस्ट्रक्शंस
खसरा नं.26, गांव मुंडका,
दिल्ली-110041

8. डॉ. राजेश बंसल
ए-12, प्रथम तल, प्रशांत विहार
दिल्ली-110085

9. श्री वीरेंद्र कुमार
74 सी, अयोध्या एन्कलेव, सेक्टर-13
रोहिणी, दिल्ली-110085

10. श्री राम गोपाल
105, भागीरथी अपार्टमेंट, सेक्टर-9
रोहिणी, दिल्ली-110085

11. श्री रमेश चांदीवाला
63, विज्ञान लोक, नियर आनंद विहार
दिल्ली-92

12. श्री सुमीत कौचर
16-डी, जनयुग अपार्टमेंट, सेक्टर-14 एक्सटेंशन
रोहिणी, दिल्ली-110085

13. श्री अभिषेक गुप्ता
17/35, पश्चिमी पंजाबी बाग,
नई दिल्ली-110026

मंगल विमर्श

सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श **त्रैमासिक पत्रिका**

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए
₹2000 मात्र

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-27565018

मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....

रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. ..... दिनांक.....

बैंक..... भेज रहे हैं,

कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम.....

पता.....

.....

..... पिनकोड .....

फोन :..... मोबाइल:.....

इ-मेल.....

इ-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in